कुरुक्षेत्र

संपादकीय

विकलांगों को करुणा नहीं, सहारा चाहिए

चालू वर्ष विकलांग वर्ष के रूप में मनाया जा रहा है और इसका उद्देश्य विकलांगों में स्वाभिमान की भावना भरना और समाज में उनके प्रति सम्मान का भाव पैदा करना है। यह कहना असंगत न होगा कि संसार के सभी समाजों में विकलांग हमेशा से ही उपेक्षित जीवन बिताते चले आ रहे हैं और उन्हें हेय दृष्टि से देखा जाता रहा है। वे भी इसे अपने भाग्य का विधान समझ कर सहते चले आ रहे हैं। यह ठीक है कि कुछ लोग उन पर करुणा की नजर डालते रहे हैं, परन्तु अब स्थिति बदली है और जन सामान्य, सरकारें तथा संयुक्त राष्ट्र यह महसूस करने लगे हैं कि विकलांगों को करुणा की जरूरत नहीं बल्कि सहारे की जरूरत है।

इस समय विश्व भर में लगभग 40 करोड़ विकलांग हैं और हमारे अपने ही देश में कुल जनसंख्या का किसी न किसी रूप में 5 प्रतिशत अपंग है। देश में नेत्रहीनों की अनुमानित संख्या 60 लाख और मूक और बधिरों की अनुमानित संख्या 15 लाख है। इसके अलावा, चोट-फेंट और युद्ध क्षेत्र में हुए आहत विकलांगों की संख्या भी लाखों में है। 1962, 1965 तथा 1971 के युद्धों में कुल मिला कर विकलांग हुए सैनिकों की संख्या 4817 थी। सरकार की ओर से विकलांगों को रोजगार देने की इस समय 26 से अधिक योजनाएं चलाई जा रही हैं और केन्द्र सरकार की रिक्तियों में 3 प्रतिशत और राज्य सरकारों की रिक्तियों में 2 प्रतिशत पद विकलांगों के लिए आरक्षित हैं। जगह-जगह इनके लिए प्रशिक्षण केन्द्र खोले गए हैं और खोले जा रहे हैं। कृत्रिम अंगों के निर्माण के लिए भी कारखाने खोले गए हैं। गुजरात सरकार ने तो एक ऐसा अध्यादेश जारी कर दिया है कि जिन कारखानों में कामगारों की संख्या 500 या इससे अधिक होगी उनकी कुल संख्या के आधे स्थान विकलांगों के लिए आरक्षित होंगे और जो कारखाने अध्यादेश के इस प्रावधान का उल्लंघन करेंगे उनके विरुद्ध कड़ी कानूनी कार्यवाही की जाएगी। यदि ऐसे अध्यादेश अन्य राज्यों की सरकारें भी जारी कर दें तो विकलांगों के कल्याण की दिशा में यह महत्वपूर्ण कदम होगा।

परन्तु विकलांगों के कल्याण की दिशा में केन्द्रीय तथा राज्य सरकारें सहायता और सुविधाएं उपलब्ध करने के जो प्रयास कर रही हैं, वह तो ठीक है परन्तु कुछ ऐसी बातें हैं जिनकी ओर उनका ध्यान जाना बहुत जरूरी है। कृत्रिम अंगों की ही बात लीजिए। एक कृत्रिम अंग 500 रुपए से लेकर 800 रुपए तक में काफी दौड़-धूप के बाद उपलब्ध हो पाता है। ठीक है कि कोई धनिक विकलांग इतना पैसा खर्च करके अपने लिए कृत्रिम अंग प्राप्त कर ले परन्तु क्या कोई दीन-हीन विकलांग कृत्रिम अंग खरीदने के लिए इतना पैसा जुटा सकता है? इसलिए जरूरी है कि ऐसी व्यवस्था की जाए जिससे गरीब से गरीब विकलांग अपने लिए कृत्रिम अंग प्राप्त कर सके।

दूसरी बात यह है कि विकलांगों के कल्याण के लिए सरकारों द्वारा जो धनराशि की व्यवस्था की जाती है उसका अक्सर दुरुपयोग होने लगता है। गंगा नगर राजस्थान का समाचार है कि गंगानगर की कोढ़ी बस्ती में उसके 1981 के बजट को कागजी व फर्जी विकलांग खा रहे हैं। यह बड़ी दुखद बात है कि जो पैसा विकलांगों के कल्याण के लिए उपलब्ध किया जाए उसे निखट्टू लोग खा पी जाएं। यह एक अक्षम्य अपराध है और ऐसे अपराधों की छान-बीन की जाए और जो अपराधी पाए जाएं उन्हें समुचित दण्ड दिया जाए।

इसके अलावा, एक बहुत ही जरूरी बात यह है कि हमारे देश में बहुत से विकलांग ऐसे भी पाए जाते हैं जो बिल्कुल ही अपंग होते हैं और कोई भी काम करना उनके लिए सम्भव नहीं हो पाता। अतः जरूरी है कि ऐसे विकलांगों के लिए पेन्शन आदि की व्यवस्था की जाए जिससे वे समाज में सम्मान-पूर्ण जीवन के साथ रह सकें। विकलांगों के जीवन में तमाम कठिनाइयों के साथ एक त्रासदी यह भी है कि उन्हें अविवाहित रहने के लिए बाध्य होना पड़ता है। समाज का कोई व्यक्ति अपाहिज को अपनी लड़की या लड़का नहीं देना चाहता। अतः ऐसी एक संस्था खड़ी की जानी चाहिए जो विकलांगों के लिए शादी-विवाह की व्यवस्था करे।

यह ठीक है कि विकलांगों के कल्याण की दिशा में सरकार इस समय काफी कारगर कदम उठा रही है, परन्तु हमें यह नहीं भूल जाना चाहिए कि समाज तथा जन-सामान्य का भी उनके प्रति कुछ कर्तव्य है और सामाजिक तथा धार्मिक संस्थाओं को भी ऐसे कदम उठाने चाहिएं जिससे अधिक से अधिक सुविधा और सहायता हमारे इन विकलांग भाई-बहनों को मिल सके।

'कुरुक्षेत्र' के लिए मौलिक लेख, कहानी, एकांकी, कविता, संस्मरण, हास्य-व्यंग्य चित्र आदि भेजिए।

अस्वीकृत रचनाओं की वापसी के लिए टिकट लगा व पता लिखा लिफाफा साथ आना आवश्यक है।

'कुरुक्षेत्र' की एजेन्सी लेने, ग्राहक बनने, पता बदलने या अंक न मिलने की शिकायत बिजनेस मैनेजर, प्रकाशन विभाग, पटियाला हाउस, नई दिल्ली-110001 से कीजिए।

सम्पादकीय पत्र-व्यवहार : सम्पादक कुरुक्षेत्र (हिन्दी), ग्रामीण पुनर्निर्माण मन्त्रालय 467, कृषि भवन, नई दिल्ली के पते पर करें।

एक प्रति 1 रु० : वार्षिक चंदा 10 रु०

दूरभाष : 382406

सम्पादक : महेन्द्र पाल सिंह

उपसम्पादक : राधे लाल

आवरण पृष्ठ : जीवन अडालजा

कुरुक्षेत्र

ग्रामीण पुनर्निर्माण का प्रमुख मासिक

वर्ष 27 अग्रहायण–पौष 1903 अंक 2

इस अंक में : पृष्ठ संख्या

मौलाना आजाद––चलता-फिरता विश्वकोष 2
ब्रजलाल उनियाल

आधुनिक युग के देवर्षि : विनोबा जी 4
सत्यवती

भारत का रेशम उद्योग : एक विवेचन 6
मुरारीलाल सिंहल

हर बूंद पानी, गढ़े विकास की नई कहानी . . . 8
ग्रामीण और शहरी जीवन के बीच आर्थिक विषमता एक अभिशाप . 10
बद्री विशाल त्रिपाठी

विद्यालयों में पौध उगाओ योजना 13
दुर्गाशंकर त्रिवेदी

शराब से मुक्ति––अभी तक एक सपना 15
जनता बायो गैस संयंत्र में और अधिक विकास . . 16
प्रो० आर० सी० भटनागर : डा० टी० आर० सिंह

अंधापन दूर करने की दिशा में प्रयास 18
खाद्य भंडारण तथा वितरण 19
दहेज एक ऐच्छिक भूल : दोषी कौन ? 21
मृदुला सिन्हा

ग्रामीण विकास में पुस्तकालयों तथा वाचनालयों का योगदान . . 24
विमला वी० गुप्ता

हमारी वन सम्पदा और उसका आर्थिक महत्व . . . 25
एस० के० धवन

पंगु चढ़े गिरिवर गहन . . . . . आवरण पृष्ठ 3
भरत चन्द्र नायक

स्थायी स्तम्भ

साहित्य समीक्षा : केन्द्र के समाचार : कविता आदि।

मौलाना आजाद - चलता फिरता विश्वकोश

※ ब्रजलाल उनियाल

"कई बातों में तो मौलाना अद्भुत व्यक्ति थे। कितना विशाल ज्ञान का भंडार था उनके पास। और बुद्धि छुरे की धार सी पैनी और सूझबूझ के भी वैसे ही धनी। मैं और मौलाना कई बातों में, दृष्टिकोण में, जीवन के प्रति रवैयों में बिल्कुल जुदा-जुदा हैं फिर भी उनके साथ मेरा निभाव बहुत अच्छा हुआ है और बहुत ही कम ऐसे लोग हैं जिनकी राय और सलाह की मैं इतनी कद्र करता हूं। लेकिन मौलाना हैं बहुत गहरे और ऊपर से देखने से मालूम ही नहीं होता कि इस समुद्र में कितने मोती हैं। नवीन और पुरातन का अद्भुत संगम है मौलाना में। हालांकि खुद तो मौलाना के संस्कार अठारहवीं सदी के से हैं पर जितना कुछ किताबों से जानकारी हासिल हो सकती है, वह सब आज की दुनिया के बारे में उनको है। वे अपने संस्कारों को आज के हालात में ढालते भी हैं और बहुत ही अच्छे तरीके से। उनकी विद्वत्ता और व्यक्तित्व दोनों ही कमाल के थे। पर लगता है उनमें कहीं कुछ ऐसा है जिसने उन्हें उनका सच्चा विराट स्वरूप दुनिया के सामने नहीं आने दिया। उच्च कोटि के विचारक और उत्कृष्ट लेखक और अमित ज्ञान के आगार —फिर भी कितना कम लिख पाए वे। कितना काम किया उन्होंने पर कितने लोग जानते हैं? क्या वे जरूरत से कहीं ज्यादा दार्शनिक हैं यानि आलोचनाशील हैं यानि अत्यधिक संवेदनशील हैं? शायद सभी बातों का समन्वय है।

शायद मौलाना बहुत जल्दी इतना कुछ पढ़-लिख-गुण गए। वे जवानी में ही गंभीर हो गए। जब वे केवल चौदह साल के थे उन्हें उच्चकोटि का विद्वान समझा जाता था और मेरा ख्याल है कि उस उम्र में भी तर्क और दर्शनशास्त्र पर वे व्याख्यान दिया करते थे। इन असामान्य गुणों ने उनके व्यक्तित्व के और पहलुओं को दबा दिया। ऐसा न सोचें कि वे बडे उदासीन तबीयत के थे, वे अत्यधिक मानवीय थे और हंसी मजाक में भी आगे थे।

उनको तो विश्वकोष कहा जाना चाहिए। कितना कुछ याद था उन्हें। अफ्लातून और अरस्तू तो उनकी उंगलियों पर थे। अरब स्पेन के कोरबोदा पर जोकि 756 से 1031 तक मुस्लिम और यहूदी संस्कृतियों का केन्द्र था, वे अधिकारी विद्वान थे।"

ये शब्द हैं जोकि संसार के एक महान राजनीतिज्ञ व राष्ट्रभक्त मनीषी जवाहरलाल नेहरू ने जेल में रहते हुए मौलाना अबुल कलाम आजाद के बारे में लिखे। क्या लिखा जाता है, यह तो महत्वपूर्ण है ही पर इससे भी ज्यादा महत्वपूर्ण बात यह है कि वह बात किसने लिखी। अगर जवाहरलाल जैसे विश्वविश्रुत व्यक्ति मौलाना आजाद के बारे में यह लिख सकते हैं तो सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि मौलाना आजाद का व्यक्तित्व वस्तुतः कितना ऊंचा होगा।

मौलाना अबुल कलाम आजाद के पूर्वज बाबर के शासनकाल में ही भारत आ गए थे। इनके पूर्वज विद्याव्यसनी और धार्मिक प्रवृत्ति के रहे। इनके दादा तभी गुजर गए थे जबकि इनके पिता मौलाना खैरुद्दीन छोटे ही थे। इसलिए इनके पिता की शिक्षा-दीक्षा उनके पितामह ने संभाली। इनके पिता करीब पच्चीस वर्ष के थे तभी मक्का चले गए। वहीं शादी की। इनके पिता अरब जगत में अपनी विद्वत्ता के कारण प्रसिद्ध हो गए। इनका जन्म मक्का में सन् 1888 में हुआ। सन् 1890 में इनके पिता पूरे परिवार के साथ कलकत्ता आ गए। उनकी मां की कुछ ही समय बाद मृत्यु हो गई। घर पर ही इनकी शिक्षा हुई। सोलह वर्ष की अवस्था में तो इन्होंने उच्च दर्शन, गणित तथा तर्कशास्त्र पढ़ाना भी शुरू कर दिया। इन्होंने बाइबिल का भी अध्ययन किया। उन्होंने बचपन से ही मत-मतान्तरों के भेदभाव पर धर्माधर्म के बीच झगड़ों पर तीव्र प्रतिक्रिया व्यक्त की। उन्होंने एक बात सबसे पूछी कि अगर मजहब का मतलब सार्वभौमिक सत्य है तो विभिन्न मजहबों के बीच मतभेद क्यों? पढ़ने और गहन चिन्तन ने मौलाना के भीतर बैठे चिन्तक और दार्शनिक को झकझोर दिया और इसलिए मौलाना ने अपना उपनाम रखा आजाद यानी वे किसी खास खानदानी अकीदे से बंधने पर मजबूर नहीं थे।

उन्हें अंग्रेजी पढ़ने की भी धुन सवार हो गई। ज्ञान की भूख बढ़ती गई और वे कई विषयों के गंभीर विद्वान् बन गए। उन्होंने अंग्रेजी का बहुत अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया और उनके पास अंग्रेजी पुस्तकों का भी अच्छा संकलन था। एक बार तो जब जवाहरलाल नेहरू को बेगम समरु के बारे में कुछ जानकारी लेनी थी तो वे मौलाना आजाद के पास पहुंचे और मौलाना ने फौरन ही अपने संकलन से एक अंग्रेजी की पुस्तक निकाल कर दी जिसमें पूरी जानकारी दी गई थी। वे अंग्रेजी अच्छी जानते थे पर उसमें बोलना व लिखना दासता समझते थे। इसीलिए सरकारी फाइलों पर भी अपने निर्णय उर्दू में लिखते थे।

वे पहले क्रान्तिकारियों के साथ रहे पर धीरे-धीरे वे गांधी जी के संपर्क में आने पर गांधीजी के रास्ते पर चल पड़े।

टर्की, मिश्र, फ्रांस और यूरोप के अनेक देशों का उन्होंने भ्रमण किया था और बहुत सी बहुमूल्य जानकारी हासिल की थी।

उन्होंने सन् 1912 में 'अल हिलाल' नाम का पत्र प्रकाशित किया। उर्दू के पत्रकारिता के इतिहास में यह एक क्रान्तिकारी कदम था। इसने तमाम मुसलमानों में खलबली मचा दी। इसकी मुखालफत भी बहुत हुई पर कल्पना कीजिए, उस समय तक इसकी 26,000 प्रतियां हाथों-हाथ बिकने लगी। ऐसा उर्दू पत्रकारिता के इतिहास में न सुनने को मिला और न देखने को। इस पर धड़ाधड़ जुर्माने हुए। मौलाना जुर्माने भी भरते रहे। पर इस अखबार ने देश में क्रान्ति मचा दी। वे कई बार जेल गए और जीवन भर गांधी के साथ कंधे से कंधा भिड़ाकर आजादी की लड़ाई में भयंकर यातनाएं सहते रहे। पर मजाल है कि कभी उनके कदम डगमगाए हों या उनका स्वर लड़खड़ाया हो। मौलाना आजाद के सामने जब लार्ड माउन्टबेटन का देश के बंटवारे का सुझाव आया तो वे अत्यन्त

दुखी हुए । उन्हें तो इस बात का भी बहुत धक्का लगा कि जवाहरलाल जैसे निष्ठावान और ईमानदार आदमी भी उनके जाल में फंस गए । उन्होंने तो यहां तक कहा कि शायद जवाहरलाल की भावुकता और लार्ड माऊंट-बेटन और कृष्णामेनन की मिली भगत नेहरु को बदलने में कामयाब हुई ।

मौलाना आजाद ने अन्तरिम सरकार बनाने से पहले कहा था कि मुस्लिम लीग को गृह मंत्रालय सौंपा जाए पर अन्य नेताओं के कहने पर उन्हें वित्त मंत्रालय सौंपा गया और सबको बाद में मालूम हो गया कि वित्त मंत्रालय सौंपकर कांग्रेस ने कितनी भयंकर भूल की थी । मौलाना बड़े दूरदर्शी थे ।

गांधी जी को कहे गए मौलाना के इन शब्दों को क्या इतिहास भूल सकेगा––

"मैं तो मुल्क के बंटवारे के खिलाफ हमेशा ही रहा हूं और आज भी हूं । पर मैं आज जितनी मुखालफत कर रहा हूं उतनी मुखालफत मैंने पहले कभी नहीं की । मुझे बहुत अफसोस है कि जवाहरलाल और सरदार पटेल ने भी हथियार डाल दिए हैं । अब तो मेरी महज एक ही उम्मीद आप में बाकी है । अगर आप इसके खिलाफ खड़े हो जाते हैं तो शायद मुल्क बच जाए, लेकिन आप भी हार मान बैठे तो मुल्क डूब गया ।"

गांधी जी का दिल दहल गया पर आखिर वे सबके सामने कहते भी क्या ?

यह कहना बिल्कुल गलत है कि मौलाना बंटवारे के बाद सिर्फ मुसलमानों के हत्यांकांड से दुखी हुए । उन्होंने एक ही स्वर से और उतनी ही जोर से दोनों आततायियों का घोर विरोध किया ।

जब गांधी जी ने दिल्ली के भयंकर हिन्दू-मुस्लिम दंगों के कारण उपवास किया और सभी नेताओं के आश्वासन पर उपवास तोड़ने का निर्णय किया तो उनके पास रामधुन चल रही थी और उनकी पोती संतरे का रस का गिलास लाई । गांधी जी बहुत कमजोर थे इसलिए उन्होंने इशारा किया कि रस का गिलास मौलाना पिलाएंगे । मौलाना ने गांधी-जी के होंठो पर गिलास लगाया और गांधी जी ने अपना व्रत तोड़ा । कितना आदर भाव था गांधी जी में मौलाना के लिए ।

शायद बहुत कम लोगों को मालूम हो कि उनका मानवीय पक्ष कितना ऊंचा था । जब वे जेल में थे तो उन्हें खबर मिली कि उनकी बेगम बहुत बीमार है । वे बहुत परेशान रहे मगर मजाल है कि उन्होंने किसी से अपना दुखड़ा रोया हो । चुपचाप बर्दाश्त करते रहे । यहां तक कि उन्हें अपने भतीजे को लिखना पड़ा कि वे बेगम की हालत की रिपोर्ट रोजाना बजरिए तार के भेजा करें । पर अफसोस यही रहा कि उनको केवल बेगम की मृत्यु का ही तार मिला । मौलाना जेल में पड़े रहे और बेगम की मृत्यु भी हो गयी । उन्हें देखने से पता तो चल जाता था कि वे बहुत गमगीन है पर मजाल है कि कभी अपना गम किसी पर जाहिर होने दिया हो ।

पंडित जवाहरलाल नेहरू और उनमें बहुत कम गर्मागर्मी होती थी पर आखिर थे तो दोनों ही इन्सान । एक बार जेल में एक मामूली बात पर दोनों में काफी गर्मागर्मी हो गई । बात क्या थी कि जेल में एक नई तरह का दलिया तैयार किया गया था । मौलाना आजाद ने शिकायत की कि यह आसानी से पचेगा नहीं । नेहरू जी ने कहा कि जो लोग इसे खा रहे हैं उनके तो हाजमें ठीक हैं । मौलाना ने समझा कि यह एक तरह का ताना है कि नेहरू का हाजमा अच्छा है और मौलाना का बुरा । मौलाना ने भी नेहरूजी की उनकी तंदरुस्ती पर घमंड की आलोचना की । बात तो आई गई हो गई पर नेहरू जी को यह खलती रही क्योंकि उन्होंने मौलाना को कुछ कह दिया था । सोचने लगे कि माफी मांग लेंगे । पर मौलाना बाजी मार के ले गए । दूसरी बारी में जब साथ-साथ खाना परोसा गया, मौलाना ने सभी लोगों के सामने अफसोस जाहिर किया । पंडित नेहरु इस बात से बहुत ज्यादा प्रभावित हुए ।

मौलाना समय के बड़े पाबन्द थे । यहां तक कि वे सेकिंडों की देर भी बर्दाश्त नहीं करते थे । उनकी इस आदत से बहुत से लोग बहुत चौंकते थे । लोग तो यहां तक कहते थे कि जर्मन दार्शनिक कान्ट की तरह समय के पाबन्द हों । लोग कान्ट के आने-जाने पर अपनी घड़ियां मिलाया करते थे । इसी तरह जब जेल में लोग देखते थे कि मौलाना चले आ रहे हैं तो लोग निश्चित रूप से कह सकते थे कि खाना खाने के समय में तीस सेकिंड हैं । उनकी दिनचर्या प्रातः चार बजे से शुरु हो जाती थी ।

जब मौलाना ने एक बार जेल में सरदार बल्लभभाई पटेल को पेट की बीमारी से ग्रस्त देखा तो वे बहुत चिंतित हो गए । मौलाना जेल के सुपरिन्टेन्डेंट से मिले और उन्हें सुझाव दिया कि सरदार पटेल के निजी डाक्टर को दिखाया जाए या मेडीकल बोर्ड उनकी जांच करे ।

मौलाना आजाद एक ऐसे व्यक्ति थे जिन्होंने राष्ट्र के प्रति निष्ठा को कभी आंच नहीं आने दी । वे यद्यपि धार्मिक वृत्ति के थे पर उनमें सर्वधर्मसमभाव का माद्दा कूट-कूट कर भरा हुआ था । यही कारण है कि उन्होंने और धर्मों और दर्शनों का गहरा अध्ययन किया और अपना उपनाम आजाद रखा था ।

उनकी राजनीतिक सूझबझ अत्यन्त पैनी थी । कई बार तो उनमें और महात्मा गांधी में मतभेद हुए और ऐसे भी अवसर आए कि मौलाना ने जिस बात को भांपा वह सही निकली पर उनमें गाल बजाने की आदत नहीं थी और उन्होंने कभी यह बात कही भी नहीं । कौन नहीं जानता कि मौलाना देश के विभाजन के सख्त खिलाफ थे और बराबर इसका विरोध करते रहे पर बहुमत के सामने उन्हें झुकना पड़ा । उन्होंने पहले ही यह बता दिया था कि मुस्लिम लीग के सामने हथियार डालने के परिणाम बहुत भयंकर होंगे, भारी पैमाने पर लूट-मार और हत्याकांड होंगे ।

मौलाना आजाद जहां ऊंचे विद्वान, कष्टसहिष्णु, परम देशभक्त, सर्वधर्मसम-भावी थे वहां वे युगद्रष्टा भी थे । उनका जीवन सभी भारतवासियों के लिए अनुकरणीय है । मूल्यांकन में उनको कम इसीलिए कहा गया कि उनमें राजनीतिक सुलभ कुटिलता कभी नहीं रही । शायद भविष्य उनका अधिक उपयुक्त मूल्यांकन कर पाएगा । □

आधुनिक युग के देवर्षि

विनोबा जी

सत्यवती

संसार में शायद ही कोई ऐसा प्राणी हो जो अपनी प्रशंसा से पुलकित न होता हो और उस प्रशंसा को लिखित रूप में या स्मृति में संजोकर हर्षित न होता हो। पर प्राचीन ऋषियों में, कहते हैं, कुछ लोग ऐसे भी बिरले पुरुष पुंगव थे जो अपनी प्रशंसा व निन्दा के प्रति सर्वथा उदासीन थे। विनोबा उन्हीं ऋषियों की परम्परा में हैं। पहले तो अपने प्रमाण-पत्रों को जलाया और फिर एक बार नौबत आ गई गांधी जी का एक पत्र जलाने की। गांधी जी ने आचार्य की भूरि-भूरि प्रशंसा की थी। विनोबा में बैठा ऋषि सोचने लगा कि क्या महात्मा द्वारा यह तारीफ मेरा दिमाग बिगाड़ने के लिए काफी नहीं है? और आव देखा न ताव, उस प्रशंसा भरे पत्र की आहुति दे डाली। ऐसे व्यक्तित्व के धनी कहां मिलेंगे जद्दोजहद भरी, स्वार्थ की दौड़ में, अंधी भीड़ में? प्राचीन समय में जो तपस्वी चिन्तनमग्न और तपस्या के फलस्वरूप ऋषित्व प्राप्त कर लेते थे उनमें क्षत्रियत्व प्रधान वृत्ति के ऋषि राजर्षि, ब्राह्मण प्रधान सात्विक वृत्ति के ऋषि ब्रह्मर्षि और इन दोनों से भी ऊपर निःस्पृह देवर्षि कहलाते थे। क्या आज के इस युग में किसी भी मानक से नापें, और फिर सापेक्षता को सामने रखें तो कहना ही क्या, विनोबा देवर्षि नहीं हैं क्या?

अनेक भाषाओं के प्रकाण्ड पंडित, चिन्तन की बारीकियों के विरले विश्लेषक, वर्तमान और प्राचीन के बीच के समन्वयकर्ता सेतु, भूदान आंदोलन के जनक, प्राचीन भारत के उत्कृष्ट भाष्यकार देवर्षि विनोबा नररत्न हैं।

वे बोलते हैं तो सूत्र रूप में बड़ी भारी बात कहते हैं। बहुत भारी आलोचना को छोटी-सी बात में बांध कर कहने की अद्भुत क्षमता उनमें है। एक बार जब भारत की पुलिस के बारे में कुछ कहना था तो बड़ी सीधी-सादी भाषा में उन्होंने कुछ ऐसा कहा था, "विदेशों में लोग जब पुलिस को देखते हैं तो वे बड़ी राहत महसूस करते हैं पर भारत के गांव के लोग जब पुलिस को देखते हैं तो उन्हें एक दहशत-सी महसूस होती है।" क्या इससे बढ़िया साफगोई का नमूना मिल सकता है? गीता का भाष्य भी इतना सुन्दर कम देखने को मिलता है। कौन जानता था कि सन् 1941 में गांधी जी व्यक्तिगत सत्याग्रह के लिए सबसे पहले किस आदमी को चुनेंगे? जब आदर्श विनोबा को चुना गया तो भारत भर में उनका नाम बिजली की तरह कौंध गया।

जब तेलंगाना में साम्यवादियों के आन्दोलन से तहलका मच गया तो उन्होंने भारत में भूदान आंदोलन या ग्रामदान आंदोलन चलाया। उन्होंने लोगों से जमीन की भीख मांगी और उस जमीन को भूमिहीनों में बंटवाया। यह एक रक्तविहीन क्रान्ति का उद्घोष था। इसी प्रकार उन्होंने अन्त्योदय का नारा देश को दिया।

इतना ही नहीं आचार्य विनोबा भावे ने भारत के सामने जो कार्यक्रम पेश किया है यदि उस पर अमल किया जाए तो देश की अनेक समस्याओं का समाधान हो सकता है। उन्होंने कुछ सुझाव वैज्ञानिकों को दिए थे जिनका सार यहां देना समीचीन होगा। पूरा देश इनसे लाभ उठा सकता है। उनका कहना है "एक साधे सब सधे, सब साधे सब जाए।" इसीलिए वे कहते हैं कि हम कोई भी काम अपने हाथ में लें, उसे पूरी निष्ठा से शुरू कर दें तो उससे कई और काम भी स्वतः सफल हो जाएंगे। उनकी कही कुछ बातें ध्यान देने योग्य हैं:—

ग्राम स्वच्छता

मेरा सुझाव है कि गांवों की स्वच्छता की समस्या पर सबसे पहले ध्यान दिया जाना चाहिए। गांव में कहीं भी गंदगी या कचरा नजर नहीं आना चाहिए। आज तो आदमियों का मल भी ठीक तरह ठिकाने नहीं लगाया जा सकता तो और कचरे का तो कहना ही क्या? अगर गांव बिल्कुल साफ-सुथरे हो जाएं तो वैज्ञानिक या डाक्टर आदि भी वहां रहने में नहीं हिचकिचाएंगे। अगर वैज्ञानिक इस काम को अपने हाथ में लें तो मैं उन्हें 'नोबुल विजेता' का पद देने को तैयार हूं। सफाई होने से हमें फार्मों के लिए भी स्वस्थ खाद्य तैयार करने में सहायता मिलेगी। गोबर गैस संयंत्र का प्रयोग इस दिशा में सराहनीय कदम है।

सब को काम

वातावरण की स्वच्छता के बाद बारी आती है सब लोगों के लिए काम की। अम्बर चर्खे का इस्तेमाल कई बेकार हाथों को काम दे सकता है। गांवों में अगर हम नई तकनीकें अपनाएं तो यह संभव है कि गांवों में बेकार लोगों को काम मिल सकेगा और इस दिशा में बराबर प्रयत्न किया जाना चाहिए।

अर्थव्यवस्था में गाय का महत्व

हमारी पूरी अर्थव्यवस्था बैलों पर निर्भर करती है। प्राचीन समय से ही हमारी संस्कृति में गाय का महत्त्व लक्षित होता है। प्राचीन नामों में भी यह ध्वनित होता है। गौतम का अर्थ है गोपशुओं में सर्वश्रेष्ठ। वृषभ देव का अर्थ है बैलों में श्रेष्ठ। बौद्ध, जैन और हिंदू सभी लोग गाय को सबसे ज्यादा महत्त्व देते हैं। अंग्रेजों का 'कौ' शब्द 'गौ' से कितनी समानता रखता है और इसी तरह 'बुल' और 'बैल' में भी समानता है। क्या इससे पता नहीं चलता कि कोई अन्तर्राष्ट्रीय सम्पर्क रहा होगा इनके बीच? भारत की संस्कृति में गाय, बैल को नहीं मारा जाता था। (वेदों में गाय को अघ्न्या—न

मारने योग्य कहा गया है।) हमारे वैज्ञानिकों को यह बात समझनी चाहिए। संस्कृति के इस पक्ष को बरकरार रखा जाए। अर्थ-व्यवस्था में गाय मां की तरह है और बैल पिता की तरह। स्वयं मैंने भी मां का दूध तो कुछ ही महीने पिया लेकिन अब तक जबकि मैं 84 वर्ष का हो गया हूं, गाय के दूध पर जिन्दा हूं। गोवंश का वध पूरी तरह बन्द होना चाहिए। यह वैज्ञानिक, आध्यात्मिक और राजनीतिक सभी नजरियों से जरूरी है।

गांवों को विज्ञान का लाभ

जब हम साहित्य अध्ययन करते हैं तो हम सबसे पुराने साहित्य की तरफ देखते हैं। हम सोचते हैं कि युगों बीत गए पर यह साहित्य जीवित है, यह युगों की परीक्षा में खरा उतर कर अब भी बरकरार है। पर जब हम विज्ञान की बात करते हैं तो हमें नवीनतम उपलब्धि पर ध्यान देना होता है। विज्ञान ने तो दुनिया में आकाश-पाताल का परिवर्तन ला दिया है। अकबर के जमाने में भी विज्ञान कहां था? जब अकबर को असम के सूबेदार को संदेशा भेजना पड़ा तो उसे तीन महीने जाने में लग गए और फिर तीन महीने जवाब आने में लगे। यानी पूरे छह महीने लग गए अपने सवाल का जवाब पाने में। लेकिन अब? दुनिया के किसी भी कोने से बात करने में केवल एक मिनट लगता है। इसलिए वैज्ञानिकों पर बहुत बड़ा दायित्व है। गांवों को लाभ पहुंचाया जाए पर इस समय मेरा सुझाव है कि ऐसा कुछ किया जाए कि पूरा गांव अपने को एक परिवार समझे। देश भर में हर गांव ऐसा समझे। दूसरे, देश भर में गोवंश का वध बिल्कुल बंद कर दिया जाए। यह कदम इस बात का भी प्रतीक होगा कि इन्सान और जानवरों में कैसा सम्बन्ध है।

विज्ञान और सरकार

अगर सरकार वैज्ञानिकों को उनके अन्तःकरण के विरुद्ध काम करने के लिए कहे तो उन्हें इसका विरोध करना ही चाहिए। सरकारें तो अपने वैज्ञानिकों की सहायता से अणुबम आदि बना रही हैं। एक तरफ अमरीका तो दूसरी तरफ रूस अम्बार लगा रहे हैं इन विध्वंसक बमों का। कहां चली गई बाइबिल? ऐसा तो नहीं है कि बाइबिल और बम दोनों की एक ही राशि है—'ब' से शुरू होने के कारण।

आचार्य ने आधुनिक संचार व्यवस्था की सराहना करते हुए कहा कि इनकी बदौलत वे मिनटों में दुनिया भर की बातें जान-सुन सकते हैं।

आचार्य इस आयु में भी सजग हैं, प्रबुद्ध हैं और सक्रिय हैं। उनका जीवन एक खुली किताब है। कोई कुछ भी कहे वे भर्तृहरि के इस आदर्श के चलते फिरते अवतार हैं :—

न्यायात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः।

काश! देश उनके जीवन से प्रेरणा ले सके और उनके बनाए मार्ग पर चल सके। □

"नही लड़ेंगे भाई-भाई"

कदम बढ़ाते चले जा रहे, हम निर्माण के पथ पर!
गीत सुनाते बढ़े जा रहे, नव-निर्माण के पथ पर!!
नदिया बांधी बांध बांध कर, बांधे ताल-तलैया!
अपने राष्ट्र की बड़ी नाव के हम हैं आप खिवैया!!
तीर्थ बनाए नए-नए अब, नया है रूप बनाया—
नया भाखड़ा, नया भिलाई, सब कुछ नया है भैया!!
राष्ट्र सजाते चले जा रहे, नव-निर्माण के पथ पर!
कदम बढ़ाते चले जा रहे, हम निर्माण के पथ पर!!
प्यासी थी जो अब तक धरती, पानी उसे पिलाया!
भूखे, नंगे और बिलखते मानव को दुलराया!!
खेत हरे खलिहान भरे अब, हंसता खड़ा किसान रे,
गाए, झूमें गांव की गोरी, हर आंगन हर्षाया!!
भूख मिटाते बढ़े जा रहे, हम निर्माण के पथ पर!
गीत सुनाते चले जा रहे, नव-निर्माण के पथ पर!!
हम हैं सब के, सभी हमारे, अलग कौन है भाई?
कौन है मुस्लिम, सिक्ख कौन है, कौन है बुरा ईसाई?
शान-बान पंजाब की देखो, काश्मीर की सुषमा—
उत्तर में वह खड़ा हिमालय सबका रक्षक भाई!!
ऐक्य बनाते चले जा रहे, नव-निर्माण के पथ पर!
कदम बढ़ाते चले जा रहे, हम निर्माण के पथ पर!!
नहीं लड़ेंगे भाई-भाई, भाषाओं के द्वन्द्व न होंगे!
सब की एक भावना होगी गीतों के बिखरे छन्द न होंगे!!
उत्तर से दक्षिण मिल लेगा, पूरब से मिल लेगा पश्चिम,
सभी भारतीय एक रहेंगे कहीं न कोई द्वन्द्व रहेंगे!
बंधुत्व बढ़ाते चले जा रहे, हम निर्माण के पथ पर।
गीत सुनाते चले जा रहे, नव-निर्माण के पथ पर!!

डा० योगेन्द्र नाथ शर्मा 'अरुण'
रीडर एवं अध्यक्ष (हिन्दी विभाग)
बी० एस० एम० कालेज,
रुड़की-247667।

भारत का रेशम उद्योग : एक विवेचन

※

मुरारीलाल सिहल

रेशम नाम से सभी परिचित हैं। यह शब्द फारसी भाषा से आया है। रेशम का वर्णन भारतीय प्राचीन शास्त्रों में मिलता है। संस्कृत में इसे कोशेय कहते हैं। यह नाम रेशम के कीट के कोश (ककून) से पड़ा है। रेशम का प्रधान उपयोग वस्त्र उद्योग में है। भारत का प्राचीन रेशम उद्योग काफी विख्यात था। संस्कृत साहित्य में रेशमी वस्त्र का बहुत वर्णन है।

इतिहासविदों के अनुसार मानव रेशम से आज से 3500 वर्ष पूर्व परिचित हो चुका था। 2000 से अधिक वर्षों तक केवल चीनियों को ही रेशम तैयार करने की विधि का ज्ञान था। किन्तु 555 ई० में दो भिक्षु उत्पादन सम्बन्धी जानकारी के साथ-साथ रेशम कीट के कुछ अण्डे एक खोखली छड़ी में छिपाकर कुस्तुन्तुनिया ले आए। वहां से यूरोप में और फिर सारे विश्व में रेशम का प्रसार हुआ। विश्व में रेशम उत्पादन करने वाले प्रमुख राष्ट्र हैं --जापान, चीन इटली, भारत, फ्रांस, स्पेन इत्यादि।

रेशम, एक कीड़े के कोयों से प्राप्त किया जाता है। ये कीड़े कुछ वृक्षों की पत्तियां खिला कर पाले जाते हैं। उन वृक्षों में शहतूत का वृक्ष मुख्य है। शहतूत की पत्तियां खाकर कीड़ा जो रेशमी तन्तु तैयार करता है वह सर्व श्रेष्ठ होता है। बड़ी-बड़ी तश्तरियों में शहतूत की नवीन पत्तियां डाल दी जाती हैं जिन्हें खाकर कीड़े बड़े होते रहते हैं। पत्तियां खाकर बहुत मोटा हो जाने के पश्चात् यह कीड़ा निश्चल होकर तश्तरी में पड़ी टहनियों पर लटक जाता है। इन दिनों यह खाना-पीना छोड़ देता है। अब यह अपने मुंह से एक चिपचिपे पदार्थ के तार निकालना प्रारम्भ कर देता है और उन्हें अपने चारों ओर लपेटना आरम्भ कर देता है। इस प्रकार वह रेशमी तारों के कोये में लिपट जाता है। इस कोये के अन्दर कई दिनों तक रहता है और इसका शरीर गिंडार से पंख वाले कीड़े में विकसित हो जाता है। इससे पहले कि कीड़ा कोये को काट कर उड़ जाए, इन कोयों को एकत्र कर लिया जाता है और गर्म जल में डाल कर] अथवा भाप देकर उसे भीतर ही मार दिया जाता है। तत्पश्चात् कोयों के ऊपर से उलझे हुए धागों को ब्रुश द्वारा हटा कर कोयों को शुद्ध कर लिया जाता है। उन उलझे हुए धागों को 'अतिरिक्त रेशम' (Silk Wasts) कहते हैं। स्वच्छ कोयों पर से रेशम के रेशे निकाल लिए जाते हैं। कहीं-कहीं रेशों को एक साथ बटकर रेशम का धागा तैयार कर लिया जाता है जो रेशमी वस्त्र बुनने के काम आता है। इस प्रकार प्राप्त रेशमी धागे के पिण्ड बनाए जाते हैं। जिनको 'शाप शिल्क' (Shop Silk) कहा जाता है। व्यापार में मुख्यतः इसी रेशम का प्रयोग होता है। 'अतिरिक्त रेशम' को साफ करके धुन लेते हैं और उसे भी कातकर धागा बुन लिया जाता है। इसे 'बटा हुआ रेशम' (Twisted Silk) कहते हैं।

उत्पादन

रेशम के कीड़े पालने का व्यवसाय भारत में हजारों वर्ष से होता आया है परन्तु अभी तक यह मुख्य रूप से कुटीर उद्योग ही है। इस उद्योग में 39 लाख लोगों को रोजगार मिला हुआ है और वे पूर्ण-कालीन या अंश कालीन कार्य कर रहे हैं। इनमें से 10 लाख से अधिक लोग आर्थिक रूप से पिछड़े वर्गों, विशेष रूप से, अनुसूचित जातियों के हैं। संसार में भारत ही एक ऐसा देश है जो व्यापारिक दृष्टि से महत्वपूर्ण प्राकृतिक रेशम की चारों किस्मों का उत्पदान करता है। भारतीय रेशम उद्योग मूंगा रेशम के उत्पादन में संसार में प्रथम स्थान पर है, टसर रेशम के उत्पादन में दूसरे स्थान पर और शहतूती रेशम के उत्पादन में पांचवें स्थान पर है।। देश में प्राकृतिक रेशम का वार्षिक उत्पादन 4000 टन है, जिसकी कुल कीमत चालू बाजार भाव की दर से 120 करोड़ रुपये की है। देश में इस समय रेशम की घरेलू और निर्यात की मांग को पूरा करने के लिए 1,45,000 हथ-करघे और 6077 विद्युत्-चालित करघे काम कर रहे हैं। इनके द्वारा 170 करोड़ रुपये की कीमत के 661 लाख वर्ग मीटर रेशमी कपड़ों का उत्पादन होता है। रेशम उद्योग ने सन् 1979-80 वर्ष में निर्यात के द्वारा 48.83 करोड़ रुपये की विदेशी मुद्रा अर्जित की है।

भारतीय रेशम मुख्यतया दो वर्गों में रखा जा सकता है एक तो शहतूत के वृक्षों पर पलने वाले रेशम कीटों द्वारा निर्मित जिसे शहतूती रेशम कह सकते हैं और शेष तीनों किस्मों के रेशम को दूसरे अर्थात् गैर-शहतूती वर्ग में रखा जा सकता है। शहतूती रेशम का उत्पादन कर्नाटक, पश्चिमी बंगाल और जम्मू-कश्मीर में बड़े पैमाने पर होता है। टसर रेशम का उत्पादन बिहार, उड़ीसा, मध्य प्रदेश, आन्ध्र प्रदेश और महाराष्ट्र राज्यों में होता है। मूंगा रेशम के उत्पादन में विश्व में असम का एकाधिकार है। असम में ही देश का 95 प्रतिशत ऐरी या अंडी रेशम का उत्पादन होता है। हाल ही में केन्द्रीय रेशम बोर्ड और राज्य सरकारों द्वारा किए गए विकास कार्यक्रमों के परिणामस्वरुप गुजरात, हरियाणा और राजस्थान को छोड़कर लगभग अन्य सभी राज्यों में रेशम उत्पादन शुरू करने के लिए प्रयत्न किए गए हैं। रेशम उत्पादन के लिए बलूत के पत्तों पर पलने वाले टसर की एक नई किस्म अभी हाल ही में शुरू की गई है। यह जाति उत्तर प्रदेश, हिमाचल प्रदेश, मणिपुर, असम और जम्मू कश्मीर में पाली जाती है। मणिपुर सरकार ने इन स्रोतों का सफल उपयोग शुरू कर दिया है। आशा है कि वर्ष 1982-83 तक इस राज्य में रेशम कोषों का उत्पादन 75000 कि० ग्राम तक पहुंच जाएगा।

सन् 1949 में बनाए गए 'केन्द्रीय रेशम बोर्ड' को देश में रेशम उत्पादन उद्योग के विकास की सम्पूर्ण जिम्मेदारी सौंपी गई है। रेशम उत्पादन में अनुसंधान कार्य करने, अल्पकालीन और स्नातकोत्तर स्तर पर प्रशिक्षण कार्यक्रम शुरू करने और रेशम उत्पादन का मूल-आधार तैयार करने की जिम्मेदारी भी केन्द्रीय रेशम बोर्ड की है। इस समय पूरे भारत में 'केन्द्रीय रेशम बोर्ड' की देखरेख में 4 मुख्य अनुसंधान संस्थाएं, 3 क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, 5 सेवा केन्द्र और 15 अनुसंधान विस्तार केन्द्र कार्य कर रहे हैं।

सरकार के नए आर्थिक कार्यक्रमों के अनुरूप रेशम उद्योग के विकास पर विशेष ध्यान दिया गया है। केन्द्र और राज्य सरकारों ने रेशम उत्पादन की विकास योजनाओं के लिए अधिकाधिक धनराशि की व्यवस्था की है। वर्ष 1979-80 में केन्द्र और राज्यों ने क्रमशः 8 करोड़ और 11.98 करोड़ रुपये खर्च किए हैं जबकि 1978-79 में यह राशि क्रमशः 536 करोड़ और 7.30 करोड़ रुपये थी।

सन् 1977-78 के दौरान केन्द्रीय सरकार ने कर्नाटक, तमिलनाडु, पश्चिम बंगाल और उत्तर प्रदेश के लिए सघन रेशम उद्योग विकास योजनाएं शुरू की हैं। इन योजनाओं पर 4.4 करोड़ रुपये व्यय हुए। इन योजनाओं को लागू करने से 13.5 करोड़ रुपये की कीमत का 4.9 लाख कि० ग्राम कच्चे रेशम का अतिरिक्त उत्पादन हुआ और 1 लाख लोगों को रोजगार मिला। ये योजनाएं राज्यों में केन्द्रीय योजनाओं के रूप में लागू की गईं। अप्रैल, 1979 से इन्हें राज्य योजनाओं में परिवर्तित कर दिया गया है।

शहतूती कच्चे रेशम की कीमत के स्थिरीकरण का कार्य 25 लाख रुपये की कार्यकारी पूंजी के साथ वर्ष 1978-79 में किया गया। 9 लाख रुपये की कार्यकारी पूंजी को बढ़ाकर टसर रेशम के भंडार को भी मजबूत किया गया। इन दोनों योजनाओं का उद्देश्य प्राथमिक उत्पादकों को उपयुक्त आय प्रदान करना और उपभोक्ताओं को उचित दामों पर कच्चे रेशम को उपलब्ध कराना है। 50 लाख रुपये की अतिरिक्त कार्यकारी पूंजी के द्वारा शहतूती रेशम की कीमत को स्थिर बनाने का प्रस्ताव भी है।

आगामी 5 वर्षों में कर्नाटक राज्य में कच्चे रेशम के उत्पादन को लगभग दुगना (24 लाख कि० ग्रा० से 49 लाख कि० ग्रा०) करने के विश्व बैंक के प्रस्ताव को स्वीकृति दे दी गई है। विश्व बैंक के इस कार्यक्रम पर 81 करोड़ रुपये व्यय होंगे। इनमें 4.25 करोड़ केन्द्रीय रेशम बोर्ड अनुसंधान और विस्तार कार्यों के उद्देश्य से खर्च करेगा। वर्ष 1985-86 तक सभी किस्मों के कच्चे रेशम के उत्पादन का लक्ष्य 75 लाख कि० ग्रा० निर्धारित किया गया है। अभी यह उत्पादन 40 लाख कि० ग्रा० है। कर्नाटक में विश्व बैंक योजना के कारण और अन्य राज्यों में रेशम उद्योग के विकास हेतु बढ़ाई गई पूंजी के कारण, यह उपलब्धि सम्भव हो सकेगी।

वर्ष 1985-86 तक 100 करोड़ रुपये के निर्यात का लक्ष्य रखा गया है। वर्ष 1979-80 में रेशम निर्यात से प्राप्त होने वाली कुल राशि 48.83 करोड़ रुपये थी।

इस उद्योग के विकास में प्रमुख समस्या रेशम की उत्पादन लागत का अधिक होना है। देश में पाए जाने वाले कीड़ों से रेशम की कम मात्रा उपलब्ध होती है। इसके साथ ही मौसम का भी रेशम उत्पन्न करने वाले कीड़ों पर अत्यधिक प्रभाव पड़ता है। इस उद्योग के विकास के लिए यह आवश्यक है कि उत्पादन लागत में कमी, उत्पादन के ढंगों का आधुनिकीकरण, बिक्री के लिए बाजारों का निर्माण और निर्यात व्यापार में वृद्धि की जाए।

अन्त में यह कहना अनावश्यक न होगा कि रेशम उद्योग भारत का एक प्रमुख उद्योग है लेकिन इसके विकास की ओर जितना ध्यान दिया जाना चाहिए था, शायद नहीं दिया गया। रेशम से बनी वस्तुओं की, विशेषकर साड़ियों की विदेशों में बहुत मांग है और यथोचित ध्यान दिया जाए तो रेशमी कपड़ों की इस देशी और विदेशी मांग को और अधिक बढ़ाया जा सकता है। रेशम के कीड़े पालने की ओर यदि उचित ध्यान दिया जाए तो यह व्यवसाय इतनी उन्नति करने की क्षमता रखता है कि हजारों व्यक्तियों को रोजगार मिल जाए, हजारों छोटे किसानों की आमदनी का एक साधन बन जाए। यही नहीं, भारतीय रेशमी वस्त्र की विदेशों में मांग को देखते हुए, यह व्यवसाय विदेशी मुद्रा अर्जित करने का एक बहुत बड़ा और सक्षम साधन बन सकता है। □

जब तक आदमी अपने आप को सुखी नहीं समझता तब तक सुखी नहीं हो सकता।

हर बूंद पानी गढ़े विकास की नई कहानी

"कहां चले गनपत चाचा?" नई दिल्ली रेलवे स्टेशन की टिकट खिड़की की तरफ सर पर गठरी रखे लम्बे-लम्बे डग भरते जाते हुए गनपत महतो से मैंने पूछा।

"बेटा गांव लौट रहा हूं। यहां फिर नहीं आऊंगा, चिट्ठी आई है, अब गांव में नहर पहुंच गई है। अब वहीं मेहनत करूंगा, गुजारा हो जाएगा। मेरा कौन सा बड़ा कुनबा है।" उसने कहा। गनपत मेरे गांव का एक खेतिहर मजदूर है। दो बीघे पुश्तैनी जमीन उसके पास है। परन्तु इधर कई वर्षों से लगातार सूखा पड़ते रहने की वजह से अपने परिवार के पेट भरने की खातिर उसे दिल्ली आना पड़ा था। यहां गनपत मजदूरी करता था और झुग्गी झोंपड़ी इलाके की एक खोली में रहता था। लेकिन गांव में नहर पहुंच जाने की खबर गनपत के जीवन में नई आशा की किरण लेकर आई। गांवों में बिछते हुए नहरों के जाल तथा नए-नए नलकूपों व पम्प सेटों ने गनपत जैसे लाखों किसानों के मुरझाए चेहरों पर ताजगी ला दी है।

दुर्भिक्ष के अभिशाप से तथा अनाज के मामले में स्वावलम्बी होने के लिए अपनी सरकार शुरु से प्रयत्नशील है। पर पैदावार के लिए सबसे जरूरी है पानी। अतः सिंचाई सुविधाएं बढ़ाने के लिए जी तोड़ कोशिशें हो रही हैं। 1951 से पहले देश में कुल सिंचित कृषि क्षेत्र 226 लाख हेक्टेयर था जिसमें 97 लाख हेक्टेयर क्षेत्र वृहद् और मध्यम सिंचाई से तथा 129 लाख हेक्टेयर सतही और भूमिगत जल की लघु परियोजनाओं द्वारा सिंचित था। 1961 तक बड़ी व मध्यम सिंचाई परियोजनाओं द्वारा 143 लाख हेक्टेयर की अतिरिक्त क्षमता बढ़ायी गई जो 1969 में बढ़कर 181 लाख हेक्टेयर तथा 1974 तक 209 लाख हेक्टेयर हो गई। 1976-77 में देश के कुल क्षेत्रफल 32,87,782 किलोमीटर में से 16.70 करोड़ हेक्टेयर फसली क्षेत्र था जिसके 24.8 भाग में सिंचाई की व्यवस्था की थी। 1977-78 में पांचवीं योजना के अन्त तक सिंचाई की क्षमता बढ़कर 521 लाख हेक्टेयर हो गई जिसमें 248 लाख हेक्टेयर क्षमता वृहद और मध्यम सिंचाई परियोजनाओं से और 273 लाख हेक्टेयर क्षमता लघु परियोजनाओं से उपलब्ध हुई थी। इस समय देश में कुल 18 करोड़ 63 लाख हेक्टेयर फसली क्षेत्र था और इसके 26.6 प्रतिशत क्षेत्र में सिंचाई की व्यवस्था की जा चुकी थी। 1978 और 1980 के बीच 46 लाख हेक्टेयर अतिरिक्त क्षमता का सृजन किया गया है जिसमें 19 लाख वृहद और मध्यम सिंचाई से 27 लाख हेक्टेयर क्षमता लघु सिंचाई परियोजनाओं द्वारा उपलब्ध हुई। 1979-80 के अंत में कुल सिंचाई क्षमता बढ़कर 567 लाख हेक्टेयर की हुई। इस प्रकार बीस वर्षों में ढाई गुना से अधिक भूमि में सिंचाई की व्यवस्था हो गई। 1980-81 के लिए 24 लाख हेक्टेयर भूमि की सिंचाई का लक्ष्य है।

छठी पंचवर्षीय योजना 1980-85 में वृहद् और मध्यम सिंचाई के मद पर 8448 करोड़ रु० का परिव्यय निर्धारित है जिसमें केन्द्रीय क्षेत्र में 90 करोड़ रु० की व्यवस्था है। इससे 57 लाख हेक्टेयर की अतिरिक्त क्षमता के सृजन का लक्ष्य है। इसी प्रकार लघु सिंचाई और कमान क्षेत्र विकास कार्यक्रम के लिए क्रमशः 1810 करोड़ रु० और 856 करोड़ रु० का प्रावधान किया गया है और इसके द्वारा लघु सिंचाई क्षेत्र में 80 लाख हेक्टेयर की अतिरिक्त क्षमता के सृजन का लक्ष्य है। दीर्घावधि योजना के अन्तर्गत इस सदी के अन्त तक कुल 1130 लाख हेक्टेयर कुल सिंचाई क्षमता का लक्ष्य है। इसका अर्थ यह है कि अब तक स्थापित सिंचाई क्षमता में अगले बीस वर्षों में लगभग 570 लाख अतिरिक्त क्षमता का सृजन किया जाएगा। इसके लिए अगले दो दशकों में प्रतिवर्ष औसतन 25 लाख हेक्टेयर की दर से अतिरिक्त क्षमता सृजन करने की आवश्यकता होगी।

20 लाख हेक्टेयर प्रति वर्ष अतिरिक्त वर्तमान सिंचाई क्षमता को प्राप्त करने के लिए राष्ट्र ने लम्बा सफर तय किया है। 1951 में आयोजित विकास शुरु होने के समय से 172 वृहद और 865 मध्यम सिंचाई परियोजनाओं को पूरा करने का काम हाथ में लिया गया। इनमें 46 वृहद् और 517 मध्यम परियोजनाएं पूरी हो चुकी हैं। अन्य 50 वृहद् परियोजनाएं काफी हद तक पूरी हो चुकी हैं और बहुत सी अन्य परियोजनाओं से आंशिक लाभ प्राप्त होने शुरु हो गए हैं। 172 निर्माणाधीन परियोजनाओं

में से 62 परियोजनाएं 1976 से पहले शुरु की गई थीं। इनमे से 54 परियोजनाएं छठी पचवर्षीय योजना के दौरान और बाकी आठ परियोजनाएं सातवीं पंचवर्षीय योजना के पहले दो वर्षों में पूरी की जाएंगी। इस प्रकार कुल 98 बड़ी परियोजनाएं छठी योजना के दौरान पूरी हो जाएंगी और शेष 74 सातवीं योजना में पूरी होंगी। अधिकांश मझौली योजनाएं छठी योजना के दौरान पूरी हो जाएंगी। 1951 से 1974 तक सभी साधनों से सिंचाई क्षमता में 10 लाख हेक्टेयर प्रति वर्ष की औसत दर से वृद्धि हो रही थी। 1974 में शुरु किए गए 20-सूत्री कार्यक्रम के अन्तर्गत सिंचाई विकास को दी गई उच्च प्राथमिकता के कारण सिंचाई क्षमता के सृजन में वृद्धि की यह औसत दर बढ़कर 20 लाख हेक्टेयर प्रति वर्ष की हो गई। और अब इस क्षमता को जैसा कि ऊपर कहा गया है 25 लाख हेक्टेयर प्रति वर्ष करने की परिकल्पना की गई है।

अब तक की सिंचाई परियोजनाओं के पूरा हो जाने से देश के एक बड़े भू-भाग का कायाकल्प हो गया है। 'बिहार का शोक' कही जाने वाली कोसी और गंडक में बांध बंध जाने से न केवल बाढ़ की विभीषिका समाप्त हो गई अपितु प्रभावित क्षेत्रों में हरित क्रांति आ गई। जिस राजस्थान में मरुस्थल के बालू की आंधियां बहा करती थीं वहीं राजस्थान नहर का 445 किलोमाटर भाग बन जाने से एक बड़े क्षेत्र में नए जीवन का संचार हुआ है और अभी इसका निर्माण चल रहा है। गांव के वृहद् और लघु सिंचाई एवं उद्वहन सिंचाई के साधन बिजली से चलने लगे हैं। अब तक पूरी की गई प्रमुख सिंचाई और बहूद्देश्यीय परियोजनाएं इस प्रकार हैं: नागार्जुन सागर, पोचम्पाद (आन्ध्र प्रदेश); गंडक, कोसी तथा दामोदर घाटी परियोजना (बिहार); काकड़ापार, उकई, मही नदी परियोजना (गुजरात), भद्रा ऊपरी कृष्णा, घटप्रभा, मलप्रभा परियोजना (कर्नाटक); तवा (मध्य प्रदेश), चम्बल (मध्य प्रदेश और राजस्थान); हीराकुंड, महानदी (उड़ीसा); भाखड़ा नंगल और व्यास (पंजाब, हरियाणा तथा राजस्थान); शारदा सहायक (उत्तर प्रदेश) तथा फरक्का (पश्चिम बंगाल)।

परिकल्पित सिंचाई क्षमता को यथा समय प्राप्त करने के लिए बनाई गई कार्य नीति के तहत सभी चालू परियोजनाओं की समयबद्ध कार्यक्रम के अनुसार पूरा किया जाएगा। वर्तमान पुरानी सिंचाई परियोजनाओं का आधुनिकीकरण किया जाएगा। सतही और भूमिगत जल दोनों के उपयोग सहित परियोजनाओं के बेहतर संचालन द्वारा अनुकूलतम लाभ प्राप्त करने की कोशिश की जाएगी।

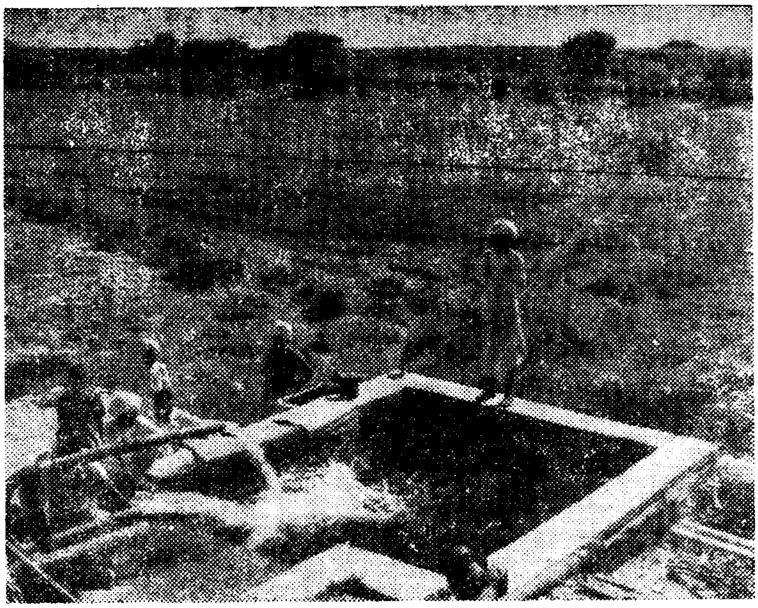

विद्युत् चालित पम्प सेट से सिंचाई

हमारी सभी सिंचाई परियोजनाएं बहूद्देश्यीय हैं। इनके द्वारा सिंचाई, मत्स्यपालन, जल विद्युत् उत्पादन, बाढ़ नियंत्रण, भूमि संरक्षण और अन्तर्देशीय जल परिवहन के बहुमुखी लाभ प्राप्त करने का लक्ष्य है। इसके लिए एक राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य तैयार किया गया है।

इस राष्ट्रीय सिंचाई परिप्रेक्ष्य में भूमिगत जल संसाधन के विकास पर काफी बल दिया गया है। यह इस तथ्य से स्पष्ट हो जाता है कि 1979-80 के दौरान लघु सिंचाई द्वारा स्थापित लगभग 14 लाख हेक्टेयर की अतिरिक्त सिंचाई क्षमता में 11.4 लाख हेक्टेयर की क्षमता भूमिगत जल के उपयोग द्वारा सृजित की गई। 1980-81 के लिए भूमिगत जल से 13.2 लाख और सतही जल से 2.8 लाख हेक्टेयर सिंचाई क्षमता कार्यक्रम करने का लक्ष्य है। 1969 से 1980 तक के इन 11 वर्षों के दौरान देश में निजी ट्यूब वैलों की संख्या 3.6 लाख से बढ़कर 21.1 लाख तथा विद्युत चालित पम्प सेटों की संख्या 10.9 से बढ़कर 39.5 लाख हो गई। 1979–80 के दौरान केन्द्रीय भूमिगत जल बोर्ड ने 77,600 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र का योजना बद्ध तरीके से सर्वेक्षण और 397 परीक्षणात्मक कुओं की खुदाई की। 1980-81 के दौरान 80,000 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र की योजना बद्ध तरीके से सर्वेक्षण और 400 प्रेक्षण कुओं की खुदाई करने का लक्ष्य है। इसके अतिरिक्त पिछले एक दशक में भूमिगत जल संसाधन के ब्यौरेवार मूल्यांकन के लिए प्रतिनिधि नदी घाटियों में 9 विशेष परियोजनाएं पूरी की गईं।

राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य के अन्तर्गत देश की विभिन्न नदियों पर यथा संभव इष्टतम जल भंडारों का सृजन करना और विभिन्न नदी प्रणालियों को परस्पर जोड़कर फालतू जल को कमी वाले क्षेत्र में उपयोग करने के लिए जल का अन्तरण करना भी शामिल है। इस योजना पर लगभग 50,000 करोड़ रु० की लागत आने का अनुमान है और इसके अन्तर्गत सतही जल से 50 लाख हेक्टेयर क्षेत्र का और भूमिगत जल के उपयोग में वृद्धि होने की 100 लाख हेक्टेयर क्षेत्र की सिंचाई होगी, 400 लाख किलोवाट विद्युत् का उत्पादन होगा। □

ग्रामीण और शहरी जीवन के बीच आर्थिक विषमता एक अभिशाप

डा० बद्री विशाल त्रिपाठी

संकल्पनात्मक आधार पर आर्थिक विकास में संवृद्धि और वितरण की प्रक्रियाएं निहित होती हैं। संवृद्धि प्रक्रिया अर्थव्यवस्था में कुल वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन वृद्धि में योगदान करती है। वितरण प्रक्रिया यह निर्धारित करती है कि उपलब्ध वस्तुओं और सेवाओं या उनकी वृद्धि का कितना अंश किस वर्ग को मिलता है। समुचित विकास नीति का लक्ष्य यह होना चाहिए कि एक ओर संवृद्धि दर ऊंची हो और दूसरी ओर संवृद्धिगत लाभों का अधिकांश भाग उन वर्गों और क्षेत्रों को मिले जो अपेक्षाकृत अधिक गरीब और पिछड़े हों। संवृद्धि और वितरणात्मक न्याय का पारस्परिक समन्वय अर्थव्यवस्था को विकसित और सभी क्षेत्र व वर्ग के लोगों को खुशहाल बना सकता है। इस कारण प्रत्येक कल्याणकारी राज्य का मुख्य लक्ष्य आर्थिक विकास की ऐसी प्रक्रिया को प्रोत्साहित करना होता है जिससे सभी कमजोर क्षेत्र और वर्ग अपेक्षाकृत अधिक लाभान्वित हो सकें। स्वतंत्रता के समय देश का आर्थिक आधार अत्यन्त कमजोर था, औद्योगिक अवस्थापना क्षीण थी, अक्षम कृषि प्रणाली और दूषित भू-स्वामित्व ढांचे के नीचे करोड़ों किसान पिस रहे थे। देश के विभाजन से लाखों लोग बेघर और समस्त आर्थिक क्रियाकलाप अस्त-व्यस्त हो गया था। ऐसी पृष्ठभूमि में अप्रैल, 1951 से नियोजित विकास प्रक्रिया आरंभ की गई ताकि समाजवादी आधार पर जनतांत्रिक विधि से आर्थिक विकास हो। नियोजित विकास प्रक्रिया के फलस्वरूप पिछले तीन दशकों में प्रतिवर्ष औसतन 3.2 प्रतिशत की दर से राष्ट्रीय आय बढ़ी, जबकि नियोजन पूर्व इस शताब्दी के प्रथम अर्द्धांश में राष्ट्रीय आय में केवल 1.1 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से वृद्धि हो रही थी जो बढ़ी हुई जनसंख्या में विलीन हो जाती थी और शुद्ध प्रभाव लगभग शून्य हो जाता था। परन्तु योजनाकाल में विभिन्न क्षेत्रों में सराहनीय आर्थिक प्रगति के बावजूद देश में अंतर्क्षेत्रीय और अंतर्वर्गीय विषमता बढ़ती जा रही है, जबकि विषमता निवारण प्रत्येक पंचवर्षीय योजना का एक प्रमुख लक्ष्य रहा है। विकास प्रक्रिया में अर्थव्यवस्था के कुछ क्षेत्र आगे निकल गए जबकि बहुत से क्षेत्र पिछड़े और पारंपरिक ही बने रहे। अस्तु गरीबों और अमीरों के बीच दूरी बढ़ रही है। एक ओर चन्द श्रीमान् लोग समस्त सुख सुविधा युक्त विलासी जीवन बिताने में व्यस्त हैं तो दूसरी ओर आधार पर बहुसंख्यक को सम्यक् भोजन भी नहीं मिलता। कुछ लोग आराम और वैभव की प्रचुरता में हैं तो बहुसंख्यक कठिनाई में और उनके लिए आधुनिक विकासजन्य विभिन्न वस्तुएं मात्र देखने और सुनने की चीजें बनी हैं न कि प्रयोग कर सकने की।

आर्थिक विषमताओं का एक महत्वपूर्ण पक्ष समष्टि रूप से ग्रामीण और नगरीय क्षेत्र के मध्य व्याप्त विषमता का है, जिसमें अब तक की नियोजित विकास प्रक्रिया के बावजूद बढ़ने की प्रवृत्ति रही है। अब तक की प्रत्येक पंचवर्षीय योजना के दस्तावेजों में ग्रामीण अल्पविकास की समस्या को मूल समस्या के रूप में देखा गया है। विकास प्रयासों के फलस्वरूप कुछ अनुकूल परिवर्तन भी हुए, ग्रामीण जनसमुदाय के दैनिक व्यवहार और विचारधारा में परिवर्तन भी आया, उनकी भोजन, आवास, आवागमन, मनोरंजन आदि से सम्बन्धित आदतों में सुधार भी हुआ। लेकिन समग्र रूप से ग्रामीण क्षेत्र का विकास शहरों के अनुरूप नहीं रहा और तुलनात्मक दृष्टिकोण से गांव विकास प्रक्रिया में पीछे खिसकते गए। परिणामतः आर्थिक विषमता का स्वरूप आज कुछ इस प्रकार हो गया है कि देश ग्रामीण और नगरीय क्षेत्रों में विभक्त हो गया। यद्यपि दोनों में अंतर्वर्गीय विषमताएं हैं परन्तु फिर भी एक गरीबी और पिछड़ेपन से ग्रस्त क्षेत्र के रूप में और दूसरा सम्पन्न क्षेत्र के रूप में प्रयुक्त होने लगा है। यदि ग्रामीण और शहरी क्षेत्र गरीबी, आय, संपत्ति, बचत एवं उपभोग स्तरों पर विचार किया जाए तो ग्रामीण और नगरीय क्षेत्र के बीच व्याप्त विषमता का आभास होता है।

भारत में निरपेक्ष रूप से जनसंख्या का एक बहुत बड़ा भाग गरीबी और अभाव का जीवन बिताता है लेकिन उसकी व्यापकता और सघनता ग्रामीण क्षेत्र में ही अधिक है। ग्रामीण क्षेत्र में गरीबों की निरपेक्ष संख्या तो अधिक है ही साथ ही साथ गरीबी में जीवन बिताने वाली जनसंख्या का प्रतिशत भी अधिक है। भारतीय योजना आयोग द्वारा 1978-83 की पंचवर्षीय योजना में यह अनुमान लगाया गया कि ग्रामीण भारत का 48 प्रतिशत जनसंख्या गरीबी की रेखा से नीचे जीवन यापन करती है जबकि नगरीय क्षेत्र में गरीबी के रेखा से नीचे रहने वालों का प्रतिशत 41 था। राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण द्वारा एकत्रित आंकड़ों के आधार पर केन्द्रीय योजना मंत्री श्री एन०डी० तिवारी ने यह उद्घाटित किया है कि ग्रामीण क्षेत्र की लगभग 51 प्रतिशत और नगरीय क्षेत्र की 38 प्रतिशत जनसंख्या गरीबी की रेखा से नीचे जीवन निर्वाह करती है। प्रधान मंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने मार्च, 1980 में संसद में बताया कि ग्रामीण भारत की 54.09 प्रतिशत जनसंख्या गरीबी की रेखा से नीचे है। जाहिर है

कि गांव ज्यादा गरीब होते जा रहे हैं। आंकड़े तो अपनी जगह स्थिति का संकेत करते ही हैं इसके अतिरिक्त देश के गांवों का अवलोकन यह स्पष्ट संकेत करता है कि गांवों की 'श्री' क्रमशः कम होती जा रही है और उसका संकेन्द्रण कतिपय लोगों में होता जा रहा है।

देश की कुल जनसंख्या का 80 प्रतिशत भाग गांव में रहता है जिसके केवल 4.95 प्रतिशत परिवारों की औसत वार्षिक आय रु० 10,000 या उससे अधिक है। दूसरी ओर नगरों में रहने वाली जनसंख्या के 17.61 प्रतिशत परिवारों की औसत वार्षिक आय रु० 10,000 या उससे अधिक है। 'नेशनल काउन्सिल आफ एप्लाइड इकोनामिक रिसर्च' के एक अध्ययन 'हाउसहोल्ड इन्कम एन्ड इट्स डिस्पोजीसन' के आंकड़ों के अनुसार एक नगरीय परिवार की औसत वार्षिक आय 7074 रुपये है जबकि एक ग्रामीण परिवार की औसत वार्षिक आय मात्र 3930 रुपये है। नगरीय क्षेत्र के उच्चतम 1.5 प्रतिशत परिवारों की औसत वार्षिक आय 30,000 रुपये या उससे अधिक है, जबकि ग्रामीण क्षेत्र के केवल 0.2 प्रतिशत परिवारों की ही आय 30,000 रुपये या उससे अधिक है। ग्रामीण क्षेत्र की कम से कम 50 प्रतिशत जनसंख्या अपनी न्यूनतम आवश्यकताओं को भी पूरा कर सकने की आय नहीं कमा पाती है।

ग्रामीण और नगरीय क्षेत्र के मध्य सम्पति वितरण में व्याप्त विषमताएं और भी अधिक सघन हैं। सम्पत्ति वितरण में व्यापक विषमता की पुष्टि दोनों क्षेत्रों से प्राप्त होने वाले सम्पत्ति कर के आंकड़ों से होती है। वर्ष 1978-79 में सम्पूर्ण ग्रामीण क्षेत्र में कुल 16664 व्यक्ति सम्पत्ति कर के लिए अर्हय पाए गए थे जिनपर कुल 1,85,66,000 रुपये कर लगाया गया था। दूसरी ओर केवल दिल्ली नगर में उस वर्ष कुल 19149 व्यक्ति संपत्ति कर लगाने के लिए अर्हय पाए गए थे और उनपर लगाया गया कर 3,48,25,000 रुपये था। लगभग यही स्थिति अन्य महानगरों की भी है। इससे यह प्रतीत होता है कि केवल दिल्ली में रहने वाले सम्पत्तिवान व्यक्तियों की संख्या ग्रामीण क्षेत्र के समस्त सम्पत्तिवान व्यक्तियों की संख्या से अधिक है। इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि संपत्ति का संकेन्द्रण शहरों में अधिक है।

यदि ग्रामीण और नगरीय क्षेत्र की बचतों पर दृष्टिपात किया जाए तो स्थिति और भी अधिक स्पष्ट होती है। आई०सी०ए०ई० आर० के उक्त अध्ययन के अनुसार ग्रामीण क्षेत्र में प्रतिव्यक्ति औसत बचत मात्र 106 रुपये है जबकि नगरीय क्षेत्र में प्रतिव्यक्ति औसत बचत 272 रुपये है। ग्रामीण क्षेत्र की प्रतिव्यक्ति बचत के तुलना में नगरीय क्षेत्र की प्रतिव्यक्ति बचत ढाई गुना से भी अधिक है। ग्रामीण क्षेत्र के लगभग 90 प्रतिशत लोगों की औसत बचत नगरीय औसत से नीची है। ग्रामीण क्षेत्र के उच्चतम् 10 प्रतिशत लोगों की औसत बचत, नगरीय औसत बचत से ऊंची है। आवश्यक सामाजिक सेवाओं की जो अवस्थापना गांवों में उपलब्ध है उससे कई गुना अधिक और ज्यादा सशक्त शहरों में उपलब्ध है। आज ग्रामीण और नगरीय क्षेत्र के मध्य दरार सी उत्पन्न हो गई है। एक ओर बहुखंडीय प्रासाद बन रहे हैं तो दूसरी ओर कच्चे और फूस के मकानों का आकार और आयतन कम होता जा रहा है। एक ओर आधुनिक तकनीकी जन्य विलासिता की वस्तुओं को खरीदने की होड़ लग रही है तो दूसरी ओर कड़ी मेहनत के बाद भी अनिवार्यताओं से सम्बद्ध वस्तुओं को भी पाना दूभर हो रहा है।

इसी क्षेत्रीय आर्थिक असमानता के कारण नगर में एकत्र वैभव से चकाचौंध होकर गांव से लोग शहरों की ओर पलायन कर रहे हैं। आज देश में शायद ही ऐसा कोई गांव हो जहां के कुछ निवासी बेहतर काम की तलास में नगरों में न आए हों। कार्य की खोज में आए हुए इन ग्रामवासियों को शहर के कारखानों के दमघोंटू वातावरण में अप्रशिक्षित श्रमिक के रूप में कार्य मिलता है और बहुत से तो भारवाहन व आवागमन के स्थानीय साधन में पशुश्रम व इंजन शक्ति के स्थान पर प्रयुक्त होते हैं। इन कार्यों में उन्हें दिन भर की कड़ी मेहनत के बाद भी चन्द सिक्के मिलते हैं जिसकी क्रय शक्ति भी नगर के श्रीमान वर्ग द्वारा अत्यन्त क्षीण कर दी गई है। आवास के नाम पर उनमें से अधिकांश को गंदी बस्तियों में गंदगी युक्त और समस्त सुविधा रहित किसी प्रकार धूप और वर्षा के प्रभाव और प्रत्यक्षता को घटाने वाली झोपड़ियां मिलती हैं। इन दुर्दशाओं के बावजूद ग्रामीणों का नगरों में बना रहना इस तथ्य का द्योतक है कि यदि वे गांवों में रहते तो शायद उन्हें ऐसी जिन्दगी बसर करने का भी अवसर न मिलता। निश्चित ही इन कठिनाइयों की तुलना में भूख की मार अधिक सबल और असह्य होती है।

भारत के जल और भूमि संसाधन दुनिया के इस सन्दर्भ में सर्वश्रेष्ठ क्षेत्रों मे तुलनीय हैं। हमारा कृषि प्रणाली भी अब आधुनिक और वैज्ञानिक हो गई है। विज्ञान और तकनीक के धनात्मक शोध परिणाम प्रयोगशालाओं से खेतों तक तेजी से फैल रहे हैं। हमारी जोत का सामान्य आकार जापान, कोरिया और ताईवान से बड़ा है। अतएव एक अत्यन्त स्वाभाविक प्रश्न यह उठता है कि ग्रामीण क्षेत्र का चित्र फिर इतना धूमिल क्यों है? ग्रामीण और नगरीय क्षेत्रों के बीच ऐसी विषमता क्यों है? इस विषमता के दो प्रमुख कारण हैं: गांव में गैर कृषि उत्पादक क्रियाओं का ह्रास तथा नगरों में उत्पादक क्रियाओं और अवस्थापना का संकेन्द्रण। एक समय ऐसा था जब गांव आत्मनिर्भर थे। गांव की अधिकांश जरूरतें गांव में ही पूरी हो जाती थीं। अनाज, ईंधन, कपड़ा, घी, तेल और इसी तरह की आवश्यकता की अन्य बहुत सी वस्तुयें गांव में उत्पन्न की जाती थीं और शहरों को आती थीं। परन्तु आज अर्थचक्र घूमते-घूमते ऐसी परिस्थिति में आ पहुंचा है जब गांव नगरों के मुखापेक्षी होते जा रहे हैं। खाद्यान्न उत्पादन के अतिरिक्त अन्य सभी उत्पादक क्रियाएं नगरों और बड़े औद्योगिक घरानों में केन्द्रित होती जा रही हैं जो वस्तुएं पहले गांव में अधिक सुगमता पूर्वक बन जाती थीं वे अब यान्त्रिक सुविधा और अवस्था-

पनागत प्रचुरता के कारण नगरों में सस्ती बनने लगी हैं। फलतः गांव के कारीगर बढ़ई, लुहार, स्वर्णकार, बुनकर व अन्य शिल्पकार बेकारी की हालत में पहुंच गए हैं। गांव के करघे, खांडसारी इकाइयां और गांव की तेलघानी इकाइयां नगर के बड़े-बड़े कारखानों में समा गई। परिणामतः आज की सारी अर्थव्यवस्था शहरों और कारखानों को केन्द्र बनाकर उसके चारों ओर घूमने लगी है। कृषि की नवीन तकनीक से किसानों को कुछ लाभ जरूर हुआ है परन्तु कृषिगत आगतों और दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के रूप में वह क्रय शक्ति पुनः चीनी, कपड़ा, तेल, साबुन आदि के कारखानों के स्वामियों और बड़े व्यापारियों के पास आ पहुंची है। क्रय शक्ति के स्थानान्तरण के कारण क्षेत्रीय विषमता होना स्वाभाविक ही है।

विषमता निवारण के उपाय :

विषमता निवारण से अभिप्राय यह है कि ग्रामीण और शहरी क्षेत्र के मध्य आय, संपत्ति, उपभोग और अवस्थापना आदि से सम्बद्ध विषमताएं कम की जाएं क्योंकि ग्रामीण और नगरीय क्षेत्र के मध्य पूर्ण समानता स्थापित करना न तो संभव है और न ही इस दिशा में प्रयास किए जा सकते हैं। परन्तु विषमताओं की सघनता घटाना अत्यन्त आवश्यक है। ग्रामीण और नगरीय क्षेत्रों के मध्य विषमताएं कम करने के लिए दो प्रकार के उपायों पर विचार किया जा सकता है; निषेधात्मक उपाय और धनात्मक उपाय। निषेधात्मक उपायों के अंतर्गत आय और सम्पत्ति का नगरीय क्षेत्र से ग्रामीण क्षेत्र की ओर हस्तांतरण, लाभ का परिसीमन, सम्पत्ति और सम्पत्ति वृद्धि पर उत्तरोत्तर वृद्धिमान सघन करारोपण आदि सम्मिलित हैं। परन्तु इस प्रकार के हस्तांतरणगत प्रक्रिया की अपनी सीमा है। वे तभी तक लाभदायक होती है जब तक वे धनी क्षेत्र के उत्पादन प्रयास को हतोत्साहित नहीं करती और वे सम्पन्न क्षेत्र से निर्धन क्षेत्र में पहुंचकर अधिक (अपेक्षाकृत) अतिरिक्त आय जनित करती हैं। हस्तांतरणगत इन प्रयासों को कड़ाई के साथ लागू करने पर सम्पन्न क्षेत्र के लोगों के काय करने और बचत करने की इच्छा और क्षमता पर विपरीत प्रभाव पड़ने की आशंका रहती है। इसके अतिरिक्त इसके कारण प्रत्यक्ष विरोध का भय भी बना रहता है। इस कारण निषेधात्मक उपायों को एक सुविचारित सीमा के भीतर ही लागू किया जाना चाहिए।

विषमता निवारण के धनात्मक उपायों की कोटि में वे सभी उपाय सम्मिलित रहते हैं जो अपेक्षाकृत निर्धन क्षेत्र को उत्पादक बनाकर उनकी आर्थिक हालत सुधारने का प्रयास करते हैं ताकि विषमताएं कम हो सकें। विषमता निवारण का सर्वप्रमुख उपाय यही हो सकता है कि गरीब वर्ग या क्षेत्र को उत्पादक बनाया जाए। गरीब क्षेत्र को उत्पादक बनाने की प्रक्रिया में प्रत्यक्ष प्रयासों की आवश्यकता है। ग्रामीण अर्थव्यवस्था को विकसित करने के लिए कृषि और गैर-कृषि क्षेत्र को सुदृढ़ करना आवश्यक है। देश की कृषि अर्थव्यवस्था में नियोजन काल में सराहनीय सुधार हुआ, उत्पादन और उत्पादिता बढ़ी, परन्तु अब भी बहुत करने को शेष है जिसकी संभावनाएं विद्यमान हैं। प्रदर्शन फार्मों और भूमि में निहित निरपेक्ष उत्पादन क्षमता के आंकड़ों से यह ज्ञात होता है कि सक्षम प्रसार सेवा और उपयुक्त कृषि निविष्टियों की सामयिक आपूर्ति द्वारा प्रति हेक्टेयर उत्पादन स्तर दुगने से अधिक किया जा सकता है। सम्प्रति गेहूं, धान और मक्का की औसत उपज क्रमशः 15.74 क्विंटल, 13.39 क्विंटल और 12.00 क्विंटल प्रति हेक्टेयर है। प्रदर्शन फार्मों के आंकड़ों से यह ज्ञात होता है कि उन पर गेहूं, धान और मक्का की औसत उपज क्रमशः 51.49, 38.14 और 32.28 क्विंटल प्रति हेक्टेयर है। भूमि में निहित चरम उत्पादन क्षमता तो अभी बहुत अधिक है। अतः आशान्वित होना अभी स्वाभाविक ही है। भारत में इस समय 14.22 करोड़ हेक्टेयर शुद्ध कृषित क्षेत्र से लगभग 130 टन खाद्यान्नों का उत्पादन होता है जबकि चीन मात्र 11.20 करोड़ हेक्टेयर क्षेत्र पर खेती करके प्रतिवर्ष लगभग 300 टन खाद्यान्नों का उत्पादन कर लेता है। तात्पर्य केवल यह है कि अभी प्रति हेक्टेयर उत्पादिता बढ़ाकर उत्पादन बढ़ाने का पर्याप्त संभावनाएं विद्यमान हैं। परन्तु प्रदर्शन फार्मों के उत्पादन स्तर के नजदीक प्रति हेक्टेयर औसत उत्पादन प्राप्त करने के लिए आवश्यक है कि संतुलित सिंचाई सुविधा, सम्यक उर्वरक और क्षेत्र विशेष की परिस्थिति के अनुरूप विभिन्न फसलों के अधिक उपज देने वाले बीजों की आपूर्ति की जानी चाहिये। सम्यक भूमि प्रबन्ध द्वारा भी ग्रामीण अर्थव्यवस्था की स्थिति सुधारी जा सकती है। कृषि योग्य बेकार पड़ी भूमियों, पानी के भराव से बेकार पड़ी रहने वाली भूमियों और अपेक्षाकृत कम ऊंची-नीची भूमियों को फसलों के अंतर्गत लाया जा सकता है। उपलब्ध आंकड़ों से यह प्रतीत होता है कि सम्यक भूमि व्यवस्था द्वारा अभी लगभग 3.0 करोड़ हेक्टेयर क्षेत्र विभिन्न फसलों के अंतर्गत लाया जा सकता है। कृषि उत्पादिता और फसलों के अंतर्गत क्षेत्र बढ़ने से कुल उत्पादन बढ़ेगा फलतः ग्रामीण और नगरीय क्षेत्र की पारस्परिक विषमता घटेगी।

ग्रामीण क्षेत्र की निरपेक्ष गरीबी को दूर करने और उसकी विषमता घटाने के लिए अनिवार्य रूप से गैर-कृषि क्षेत्र को विकसित किया जाना चाहिए। गांव की जनसंख्या का एक बहुत बड़ा भाग, जिसमें खेतिहर मजदूर, ग्रामीण शिल्पकार, परंपरागत सेवा कार्य करने वाली जातियां और सीमान्त कृषक सम्मिलित हैं, अत्यन्त गरीबी का जीवन, किसी उत्पादक रोजगार के अभाव में बिताता है। यदि गांव में सहायक व्यवसायों और गैर कृषि रोजगार अवसरों का व्यापक प्रसार हो जाए तो एक ओर उन गरीबों की आर्थिक हालत सुधरेगी और दूसरी ओर समग्र रूप से ग्रामीण अर्थव्यवस्था मजबूत होगी। सहायक व्यवसायों के सृजन और गैर-कृषि रोजगार अवसरों के सृजन हेतु पर्याप्त प्रयास किए जा रहे हैं परन्तु सफलता अभी अत्यन्त सीमित है। वस्तुतः इस संदर्भ में भी कृषिगत विकास हेतु किए गए विनियोग के अनुरूप ही विनियोग और शोध की आवश्यकता है। □

विद्यालयों में पौध उगाओ योजना

✳ दुर्गाशंकर त्रिवेदी

'वृक्ष' आज की सबसे बड़ी नैसर्गिक आवश्यकताओं में से एक आवश्यकता बन गया है। यह कहना जरा भी अतिशयोक्ति नहीं होगी कि वैदिक संस्कृति की जड़ें वनों के प्राकृतिक सौरभमय वातावरण में ही विकसित हुई हैं। राजस्थान सरकार और यहां का वन विभाग बधाई का पात्र है कि उसने वृक्षों के प्रति मनुष्य का लगाव बचपन से ही बढ़े और वह केवल कागजी नहीं हो, बल्कि व्यावहारिक हो इस दृष्टि से वन विभाग ने गत वर्ष "छात्र–छात्राओं के लिए पौध उगाओ योजना" की शुरुआत की है। छोटा-सा यह अभिनव प्रयोग सफल हो गया तो वृक्ष विहीन मरुप्रदेश में एक नई क्रान्ति का श्रीगणेश होगा।

बाल्यकाल से ही संस्कारित वृक्ष-संस्कृति का प्रभाव मैं इसी से महसूस करता हूं कि अध्यापक, प्रधानाध्यापक, शिक्षण-प्रशिक्षण महाविद्यालय में प्राध्यापक के रूप म मैंने अपने जीवन के चन्द वर्ष गुजारे और फूल पत्तीदार पौधों के अतिरिक्त 19 बड़े वृक्ष इन शालाओं में जीवित हैं। मेरे पिताजी की पुश्तैनी खेतीवाली भूमि में भी मैंने कई पेड़ लगाए और बचपन के विद्यार्थी जीवन में कड़े परिश्रम से पाला पोसा भी। 20 वर्षीय पत्रकारिता के जीवन में भी मैं उन वृक्षों की कुशलक्षेम जानने गया। और चूंकि लगाए अधिक थे, जीवित कम रहे, मैं व्यथित रहा। इधर के कुछ वर्षों में बढ़ती जनसंख्या के साथ ही साथ वनों का विनाश बड़ी तेजी से होता जा रहा है। परन्तु उस मात्रा में वन लगाना तो दूर रहा चन्द पेड़ तक भी नहीं लगे। स्व० संजय गांधी के पांच सूत्री कार्यक्रम ने तथा भारत सरकार की वृक्षारोपण योजनाओं द्वारा पेड़ लगाने और पं० सुन्दरलाल बहुगुणा की 'पेड़ बचाओ' आन्दोलन-बाजी ने जनता का ध्यान इस तरफ खींचा। कुछ स्थानों पर महत्वपूर्ण उपलब्धियां भी हासिल हुईं। राजस्थान में वृक्षारोपण की कई योजनायें वृक्षों की तादाद में भारी वृद्धि कर रही हैं।

प्रदेश के शिक्षा विभाग के सहयोग से विद्यालयों में परिचालित की जाने वाली "छात्राओं के लिए पौध लगाओ योजना" एक अभिनव प्रयोग है। यदि यह ईमानदारी से लागू की गई तो वृक्ष के प्रति समाप्तप्रायः सहानभूति को हम नई दिशा देने में सक्षम साबित हो सकेंगे: इस व्यावहारिक पृष्ठभूमि वाली योजना का प्रमुख उद्देश्य नन्हें-नन्हें बच्चों म वृक्षों के प्रति लगाव उत्पन्न करना है। उपयोगी वन वृक्षों के सम्बन्ध में जानकारी देना तथा खुद उन से पौधे तैयार करवाकर वृक्षों की बढ़ने की प्रक्रिया तथा कठिनाइयां समझाना है। साथ ही इस योजना को लागू करने वाले विद्यालय की बाल कल्याण निधि (चिल्ड्रन्स डेवलपमेन्ट फण्ड) हेतु पर्याप्त धनराशि भी इस योजना से एकत्रित हो जाएगी। सामूहिक रूप से कार्य करने का आनन्द तो बाल गोपाल लेने लगेंगे ही। बड़े मजे से अन्जाम देंगे वे।

राजस्थान में वृक्ष लगाना और उन्हें सही रूप में पनपाना अन्य प्रान्तों की अपेक्षा कुछ कठिन ही है। जल वायु, भूमि और मानव का उपेक्षा भाव सभी कुछ इसके कारण हैं। इधर वन विभाग द्वारा राष्ट्रीय एवं राजकीय मार्गों के दोनों ओर अन्न उपजाओ तथा बंजर कंकरीली व पथरीली और जहां नहरें हैं वहां सीपेज से हुई क्षारीय भूमि में, किसानों के स्वयं के फार्मों में घर-घर पौधे लाओ योजना आदि के द्वारा वृक्ष वृद्धि का काम शुरु किया गया है। ये पौधे अभी तक वन विभाग की अपनी निजी व्यवस्था वाली नर्सरियों द्वारा तैयार कराये जाते रहे हैं। इस वर्ष वन विभाग द्वारा ग्रामीण विद्यालयों में बच्चों के सहयोग से पौधे तैयार करने की योजनाएं बनाई गई हैं।

श्री एच० वी० भाटिया, उपवन संरक्षक शैल्टर बैल्ट प्लान्टेशन कोटा ने इसे बड़ी ही गम्भीरता से लिया है। उन्होंने इसे कार्यान्वित करने हेतु हर अच्छे पूरे पक्ष पर पर्याप्त मनोमंथन कर विद्यालयों का चयन करना शुरु कर दिया है। वे सहज रूप से स्वीकारते हैं कि इस योजना को प्रारम्भ करने के लिए शिक्षण संस्थाओं का सहयोग आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य है। परन्तु यह महत्वपूर्ण परियोजना वहीं पर शुरु की जा सकेगी जहां पर कि शिक्षण संस्थाओं म ये कुछ सुविधायें उपलब्ध होना संभव हो। वह शैक्षणिक संस्था माध्यमिक या प्राथमिक स्तर की हो पर स्थानीय या क्षेत्रीय वन अधिकारी के साथ सम्पर्क करने में सक्षम हो। विद्यालय, सड़क और वन विकास कार्यों की योजना वाले क्षेत्रों में हो। उनके पास कुएं, नदी, तालाब या हैण्ड पम्प द्वारा पौधों की सिंचाई व्यवस्था हो। खेती योग्य भूमि हो। क्योंकि उपयुक्त भूमि स्थान और अच्छी मिट्टी सम्बन्धी जरूरत मूल भूत रूप से हैं ही। अध्यापकों, अभिभावकों, और विद्यार्थियों में इस योजना के प्रति रुचि, आदरभाव तथा लगाव होना आवश्यक ही है।

वन विभाग के अधिकारी पौध योजना शुरु करते समय प्रत्येक जिले में कुछ विद्यालयों में यह कार्य कराने हेतु जांच कर उनका चयन करेंगे। उन्हें पौध योजना में उगाने की व्यावहारिक भावभूमि सिखायेंगे। बीज, कीटनाशक दवाइयां, औजार, पौलीथीन की थैलियां आदि पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध करवायेंगे। समय-समय पर आई कठिनाइयों के निवारण की पहल करेंगे तथा सुझाव भी देंगे।

उपवन संस्थान शैल्टर बैल्ट स्कीम के बारे में श्री धारिया ने सुझाव दिया है कि विभाग को

अभी अधिक से अधिक वृक्ष लगाना है। अतः पौध भी ऐसी ही होनी चाहिए जो कि शीघ्र ही विकसित हो सके। इसलिए आम, अमरूद, पपीता, लिसोड़ा, बांस, सेंजना, महुआ, नीम, यूक्लिप्टस (सफेदा), वहल, टाटटेलिस, कूपमूल, चटेल (छटेल) जंगली जलेबी, जामुन, सेमिल आदि पर ही पौध उगाने का ध्यान केन्द्रित किया गया है। ये पौधे राजस्थानी भूमि में शीघ्र ही विकसित हो सकते हैं।

चयनित विद्यालयों के छात्रों को पौधों की बुआई, पानी पिलाने, खतरनाक व नुकसान करने वाले पशुओं से बचाने, खरपतवार को निकालने आदि का कार्य करना होगा। बरसात में पौलीथीन की थैलियों में मिट्टी, खाद व कीटनाशक औषधि मिश्रण भरकर थैली में बीजारोपण कर फव्वारे से सिंचाई करके विद्यार्थी अध्यापकों के सहयोग से उन्हें पाले-पोसेंगे। समय-समय पर वन अधिकारी पौध की जांच कर सुझाव देंगे। अप्रैल में विद्यालय में ग्रीस्मावकाश होने से पूर्व विद्यालय द्वारा वन विभाग को पौध का काम सौंप देगा। इस प्रकार तैयार पौध पर वन विभाग 20 पैसे प्रति पौधे की दर से विद्यालय को देगा। चूंकि यह सामूहिक रूप से किया गया कार्य होगा, इसलिए इस राशि को "छात्र कल्याण कोष" में जमा करवाया जाएगा ताकि इसका उपयोग छात्रों की कल्याणकारी प्रवृत्तियों में ही किया जा सके और विद्यार्थियों में हीन भाव या गलत कम्पटीशन का भाव भी पैदा न हो।

राज्य की समस्त शिक्षण संस्थाओं से यह अपेक्षा की गई है कि वे स्थानीय वन अधिकारियों से निरन्तर सम्पर्क करके पौध तैयारी के कार्यक्रमों को सफल बनायें।

छात्र-छात्राओं में वृक्षों के प्रति आत्मीय आस्था व आदर भाव बनाये रखने में सहयोग करें। इस योजना से मूलभूत लाभ यह भी होगा कि बालक के मन में वृक्ष के प्रति, उसके संरक्षण के प्रति आस्था जागेगी जो वृक्ष लगाने की पहल करवाएगी। उसको पाले पोसेगी। आज वृक्षों के प्रति हमारा आत्मीय भाव संस्कारों से जुड़ा हुआ होता तो वृक्ष विहीन क्षेत्र तेजी से नहीं बढ़ पाते।

प्रदेश के वन विभाग और शिक्षा विभाग संयुक्त रूप से पहल करके इस योजना को व्यावहारिक भाव भूमि से लागू करें तो प्रान्त में हरियाली का नया युग शुरु होगा। बढ़ते हुए मरुस्थल पर रोक लगेगी। वायु प्रदूषण रुकेगा और वृक्षों से अन्य सैकड़ों फायदे तो होंगे ही। प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गांधी जब पिछली बार राजस्थान के दौरे पर पधारी थीं तो "कू बबूल" के बीजों का पैकेट साथ लाई थीं। इसकी पत्तियां पशुखाद्य के काम आती हैं और यह बहुत शीघ्र बढ़ने वाला पेड़ है। हमारी अन्न भावनायें इस पवित्र योजना के साथ हैं और चाहते हैं कि यह व्यावहारिक रूप से सफल हो। क्योंकि हर वृक्ष समृद्धि लाने के लिए ही तो होता है। □

दुर्गाशंकर त्रिवेदी
दैनिक सोशलिस्ट समाचार
मकबरा बाजार,
पी०ओ० कोटा-324006 (राज०)

मद्यपान

मद्यपान है व्यसन,
कि जिसको गले लगाया जाता——
दुष्ट प्रवृत्तियों का जिससे अभियान चलाया जाता।
मद्यपान से मद-विकार की बहने वाली धारा
रक्त-विकारों को तेजी से जन्म दिया करती है;
शारीरिक उत्तेजन का भ्रम भरा भुलावा देकर
हरती रहती शक्ति, सहज ही दुर्बलता भरती है।

मद्यपान है शाप,
कि जिससे स्वास्थ्य गलाया जाता——
श्वसनतन्त्र को जर्जरता के लिए जलाया जाता।
अनाचार, अपमान, रोग, ऋण, दुर्घटना, लाचारी
आदि आपदाओं को देता मद्य निरन्तर न्योता;
दुर्गंधी के संवर्धन के साथ-साथ जीवन की
कार्यक्षमता के घटने का लक्षण पूरा होता।

मद्यपान है सनक,
कि जिससे दुःख बढ़ाया जाता——
मनःशान्ति को जानबूझ कर दूर भगाया जाता।
मद्यपान कारण बनता है शीघ्र मृत्यु का जब भी,
अनगिन परिवारों में तब दुर्भाग्य फूलता-फलता;
मद्यपान के समय न चाहे पड़े दिखाई खतरा,
किन्तु भयंकरतम परिणाम अतीव समीप मचलता।

जगदीश चन्द्र शर्मा
प्रो० गिलूंड—313207 (राजस्थान)।

शराब से मुक्ति—अभी तक एक सपना

चौंतीस वर्ष पूर्व हम विदेशी शासन से मुक्त हुए थे। उस समय ऐसा लगता था कि अब हर प्रकार के शोषण का अन्त हो जायेगा। आर्थिक विकास के अपने कार्यक्रमों के आधार पर हमने समृद्धि के रास्तों पर आगे बढ़ना शुरू कर दिया था। इनसे लोगों की आय के स्तर, जीवन पद्धति और उनकी महत्वकांक्षाओं में परिवर्तन आया। लेकिन हमारी जनसंख्या का एक वर्ग अभी भी अज्ञानता और आत्म प्रवंचना की बेड़ियों से मुक्त नहीं हो पाया है। बंगलौर में हाल ही में जहरीली शराब से सैंकड़ों व्यक्तियों की मृत्यु और क्या सिद्ध करती है? इस "बड़े पैमाने पर आत्मघात" को सामाजिक विषमताओं के विरुद्ध विद्रोह कहकर इसके बारे में कुछ सफाई देने की कोशिश की जा सकती है। लेकिन यह कैसा विद्रोह है जिसमें माता-पिता जानबूझकर सब कुछ भूल जाने की एक क्षणिक तरंग पर सवार हो जाते हैं और एक दिन अपने निर्दोष बच्चों को अनाथ बनाकर इस संसार को छोड़ जाते हैं। ये लोग समाज के क्रूर मुनाफाखोरों के हाथ में अपनी जिन्दगी गिरवीं रखे होते हैं। गरीब लोग ही अधिकतर इनके शिकार बनते हैं।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद तीन दशकों के दौरान हम चेचक, हैजा, प्लेग और एक बड़ी सीमा तक मलेरिया जैसे भयानक रोगों का सामना करने और उन्हें समाप्त करने में सफल रहे हैं। लेकिन हम शराब के अभिशाप को पूरी तरह से समाप्त नहीं कर पाए हैं। इसके लिए जितने भी प्रयास किए गए उनका परिणाम यह हुआ कि शराब का चोरी छिपे व्यापार बढ़ता गया। इसके फलस्वरूप ही बंगलौर जैसी दुखद घटनाएं होती हैं।

हमारे समाज में शराब का व्यसन कोई नई बात या हाल ही में पैदा हुई प्रवृत्ति नहीं है। जो लोग शराब पीने की प्रवृत्ति को सही ठहराना चाहते हैं वे विभिन्न अनुकरणीय पुस्तकों में से उदाहरण देकर इसे सिद्ध कर सकते हैं। यही कारण है कि इस संबंध में केवल कानून बनाकर ही समस्या नहीं सुलझ सकती इसके लिए सामाजिक चेतना और स्वास्थ्य के बारे में शिक्षा का प्रसार होना जरूरी है। आयुर्विज्ञान ने यह पूरी तरह से सिद्ध कर दिया है कि शराब पीने से मस्तिष्क, यकृय, आंतों, स्नातंत्र और आंखों की रोशनी को क्षति पहुंचती है। इस बात का कोई भी प्रमाण नहीं मिला है कि शराब पीने से ठीक-ठीक काम करने की अधिक शक्ति और जोश पैदा होता है। इसके बारे में ज्यादा से ज्यादा यह कहा जा सकता है कि यह एक "स्नेहक" होता है और इसके प्रभाव से आमतौर पर मनुष्य की बुरे काम करने की वे मूल प्रवृत्तियां उभरने लगती हैं, जिन्हें मनुष्य लाखों वर्षों में धीरे-धीरे विकास के बाद बस में रखना सीख पाया है।

शराब के कुपरिणाम गरीब लोगों को ही ज्यादातर भुगतने पड़ते हैं। क्या "ताड़ी" की बोतल या अवैध शराब का एक गिलास किसी आदमी को उसकी बीमार पत्नी, बिगड़े हुए बेटे, घर में पैसे की कमी, बेरोजगारी या प्रेम में मिली निराशा जैसी समस्याओं का कोई हल सुझाने में मदद कर सकता है? आत्म प्रवंचना की गहराइयों से ऊपर आने वाले व्यक्ति से यह पूछो तो वह लड़खड़ाते हुए यही कहेगा कि न चाहते हुए भी शराब पीना उसकी मजबूरी है। कानून शराब के ऐसे व्यसनियों की कुछ मदद नहीं कर सकता।

भारत सरकार ने केन्द्रीय मद्य निषेध समिति की सिफारिशों के अनुसार राज्यों और केन्द्र शासित प्रदेशों की सरकारों को मार्च, 1982 तक समाप्त होने वाले चार वर्षों के दौरान एक चरणबद्ध कार्यक्रम के अंतर्गत नशाबंदी लागू करने को कहा है। इनके लिए मार्ग निर्देश तैयार करके राज्यों और केन्द्र शासित प्रदेशों को भेजे गए हैं।

वर्ष 1979-80 के दौरान भारत सरकार ने उत्पाद शुल्क की 50 प्रतिशत क्षति पूर्ति के रूप में सात राज्यों को 29 करोड़ 57 लाख रुपये दिए।

नशाबंदी का प्रचार करने के लिए प्रमुख स्वयंसेवी संस्थाओं को सहायता देने के लिए समाज कल्याण मंत्रालय द्वारा एक योजना लागू की जा रही है। मद्य निषेध शिविरों और इससे संबंधित सांस्कृतिक कार्यक्रमों के आयोजन से शराब के कुप्रभावों की जानकारी का प्रचार करने में सहायता मिलती है। सूचना और प्रसारण मंत्रालय के सभी संचार माध्यम भी इस प्रकार की शिक्षा का प्रचार करने और लोगों को शराब न पीने की प्रेरणा देने के कार्य में लगे हैं।

यह सिद्ध हो चुका है कि सही प्रेरणा के माध्यम से समाज में वांछित परिवर्तन आ सकता है। हम "सती" और बाल विवाह जैसी कुरीतियों को दूर करने में सफल रहे हैं। कुछ समय बाद हम छोटे परिवार के बारे में चर्चा करने और इसके संदेश का प्रचार करने में भी सफल रहे हैं। शराब पीने की आदत के संबंध में यह कहा जा सकता है कि हमारे यहां के अमीर लोगों में पश्चिम के लोगों की और गरीब लोगों में यहां के समृद्ध वर्ग की नकल करने की प्रवृत्ति अभी भी बनी हुई है। इस गढ़ को यदि कोई चीज भेद सकती है तो वह है सामाजिक जागरूकता और शराब के कुप्रभावों की जानकारी का प्रसार। हमें वह स्थिति पैदा करनी चाहिए और यह हम कर भी सकते हैं कि अब शराब पीकर कोई भी पति अपनी पत्नी के साथ मारपीट न करे, शराब के कारण कोई परिवार तबाह न होने पाए, कोई भी बच्चा माता-पिता के प्यार से वंचित न रहे। मद्यपान की ये ही सब दुखद स्थितियां होती हैं। □

जनता बायो गैस संयंत्र में और अधिक विकास

प्रो० आर० सी० भटनागर : डा० टी० आर० सिंह

ग्रामीण अंचलों में ऊर्जा तथा काम्पोस्ट खाद की प्राप्ति हेतु खादी एवं ग्राम उद्योग आयोग ने गोबर गैस संयन्त्र का विकास किया था। चार-पांच पशुओं के गोबर से संचालित यह संयन्त्र लगभग 3000 रुपये की धनराशि से लगवाया जा सकता है तथा इस पर 500 रुपये प्रतिवर्ष का आवर्तक खर्चा भी करना पड़ता है।

लागत की अधिकता तथा अन्य तकनीकी कमियों के कारण गोबर गैस संयन्त्र को अधिक लोकप्रियता प्राप्त न हो सकी तथा इसके प्रसार कार्यक्रम में बाधाएं आती रहीं। इस संयन्त्र में गैस संयन्त्र की समस्त त्रुटियों का निराकरण करने का प्रयत्न किया है। यह संयन्त्र भूमि के नीचे बनाया जाता है, अतः पुराने संयन्त्र की तरह भूमि के ऊपरी भाग को नहीं घेरता तथा उसे अन्य उपयोगों में लाया जा सकता है। इसके निर्माण में गोबर गैस संयन्त्र की अपेक्षा आधी लागत आती है तथा इसके रख-रखाव तथा मरम्मत आदि पर भी कोई खर्चा नहीं करना पड़ता है। इस संयन्त्र में गैस का उत्पादन भी अधिक होता है तथा इसकी आयु भी पुराने संयन्त्र की अपेक्षा दुगनी होती है।

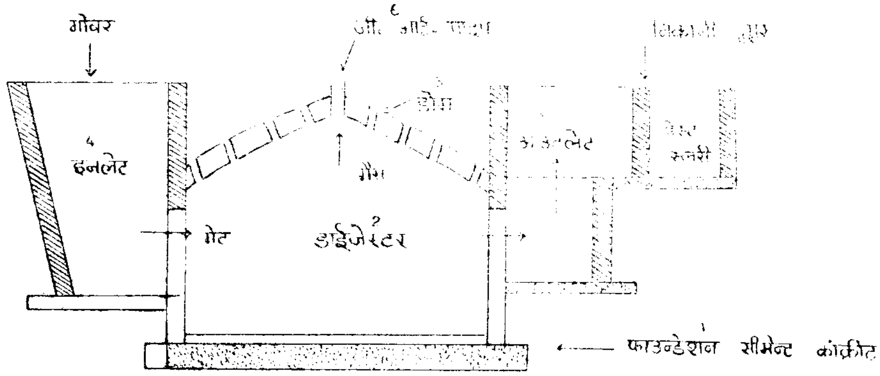

जनता बायो गैस संयन्त्र का रेखांकन

लोहे का डाइजेस्टर तथा गैस होल्डर बनाया जाता है। लोहे की बढ़ती कीमतें तथा इस से बनाए गए डाइजेस्टर तथा गैस होल्डर की मरम्मत के खर्चे के कारण किसान इसे लगाने में हिचकते रहे। संयन्त्र के इन भागों के निर्माण, रख-रखाव और मरम्मत भी ग्रामीणों के लिए एक समस्या है। लोहे के बने भागों को प्रतिवर्ष रंगने के अतिरिक्त इस संयन्त्र में गैस का उत्पादन भी सर्दियों के मौसम में संतोषजनक नहीं रहता।

जनता बायो गैस संयन्त्र के विकास द्वारा वैज्ञानिकों ने गोबर

बायो गैस संयंत्र के भाग

जनता बायो गैस संयन्त्र के 6 भाग होते हैं :

1. **फाउण्डेशन** : भूमि के अन्दर सीमेन्ट कांक्रीट से बनाया जाने वाला जल-अवरुद्ध आधार, जिस पर डाइजेस्टर का निर्माण किया जाता है, फाउन्डेशन कहलाता है।

2. **डाइजेस्टर** : संयन्त्र का यह भाग एक छोटी कोठरी के रूप में ईंट, सीमेन्ट और बालू से बनाया जाता है तथा इसी में गोबर का किण्वन अथवा फरमेन्टेशन होता है। इसकी दो विप-

रीत दिशाओं में दो गेट बनाए जाते हैं, जिन्हें इनलेट तथा आउट-लेट कहते हैं।

3. **डोम**: डाइजेस्टर का ऊपरी भाग डोम कहलाता है जो अर्द्धगोलाकार आकार का होता है तथा जिसे ईंट, बालू तथा सीमेन्ट के प्रयोग से कमरे के लेन्टर की तरह डाला जाता है। इसके ऊपरी मध्य भाग में गस पाइप लगा होता है जिससे जलनशील गैस रसोईघर तक पहुंचाई जाती है।

4. **इनलेट**: यह संयन्त्र का वह भाग होता है जिसमें प्रतिदिन गोबर व पानी का मिश्रण डाला जाता है ताकि उसे डाइजेस्टर में पहुंचाया जा सके।

5. **आउटलेट**: डाइजेस्टर से फरमेन्टेशन के उपरान्त गोबर की स्लरी इसी भाग में पहुंचती है तथा यहीं से इसे बाहर निकालने की व्यवस्था की जाती है।

6. **गैस पाइप**: डोम के बीच से डाइजेस्टर में बनी गैस को जी० आई० पाइप द्वारा रसोईघर तक लाया जाता है।

बायो गैस संयन्त्र के यह 6 भाग ऊपर दिए रेखा चित्र में दिखाए गए हैं।

तकनीक

बायो गैस के निर्माण हेतु इनलेट के द्वार की सहायता से डाइजेस्टर में निश्चित ऊंचाई तक गोबर और पानी का मिश्रण भर दिया जाता है। फरमेन्टेशन की प्रक्रिया द्वारा डाइजेस्टर में मीथेन तथा कार्बन-डाई-आक्साइड गैस बनती है, जो जलनशील होती है तथा डोम में एकत्रित होती रहती है। यह गैस जब डाइजेस्टर में पड़े गोबर की स्लरी पर दबाव डालती है तो उसका तल आउटलेट के द्वार की ओर उठने लगता है। डोम में एकत्रित गैस का प्रयोग रसोईघर में खाना बनाने, घर में रोशनी करने तथा पम्पिंग सैट आदि को चलाने में किया जा सकता है। आउटलेट से बाहर आने वाली स्लरी में साधारण गोबर गैस की अपेक्षा चार गुणा अधिक नाइट्रोजन तत्व होते हैं तथा इसका प्रयोग एक अच्छी कार्बोनिक खाद के रूप में किया जा सकता है।

लागत

जनता बायो गैस संयन्त्र के निर्माण में मुख्यतः ईंट, बाल तथा सीमेन्ट की आवश्यकता पड़ती है। पुराने संयन्त्र की तरह इसमें लोहे के ड्रम आदि नहीं बनाने पड़ते हैं। उपलब्ध अनुमान के अनुसार एक 70 घन फीट की क्षमता के छोटे संयन्त्र पर लगभग 1650 रुपये का खर्चा होता है जबकि लोहे के ड्रमों से बनाए गए प्रचलित संयन्त्र पर लगभग 3177 रुपये का व्यय करना पड़ता है। इसके निर्माण में निम्नलिखित सामग्री का प्रयोग करना पड़ता है :—

ईंटें	— 1500
रोड़ी	— 35 घन फीट
बालू	— 70 घन फीट
सीमेन्ट	— 20 बोरी
खाना बनाने के लिये चूल्हा	— एक
रोशनी के लिये लैम्प	— एक

आर्थिक सहायता

संयन्त्र की लागत का 20 प्रतिशत भाग कृषि एवं सिंचाई मन्त्रालय द्वारा अनुदान के रूप में दिया जाता है। हरिजनों को 75 प्रतिशत अनुदान की सुविधा उपलब्ध है। संयन्त्र के निर्माण हेतु बैंकों द्वारा ऋण सुविधाएं भी उपलब्ध हैं तथा सीमेन्ट आदि की प्राप्ति के लिए विकास खण्ड अधिकारी का सहयोग प्राप्य है। संयन्त्र का निर्माण करवाने वाले व्यक्ति को प्रशि-क्षित ग्राम-सेवक के परामर्श की सुविधाएं उपलब्ध रहती हैं।

तुलनात्मक लागत

निम्नलिखित सारिणी द्वारा पुराने व नए संयन्त्रों के विभिन्न आकारों की निर्माण लागत का संकेत मिलता है :—

संयन्त्र की क्षमता घन फीट	आवश्यक पशुओं की संख्या	प्रतिदिन आवश्यक गोबर— वजन कि० ग्रा०	व्यक्तियों की संख्या जिनका भोजन बन सकता है	3 घन्टे जलते-लैम्पों की संख्या	जनता संयन्त्र की लागत रु० में	प्रचलित संयन्त्र की लागत रु० में
70	3–4	50	4–5	1	1650.00	3177/-
105	5–6	80	5–6	2	2250.00	4140/-
140	7–8	120	8–10	3	2910.00	4650/-
210	10–12	160	10–12	4	3760.00	5921/-

उपर्युक्त व्याख्या से स्पष्ट है कि जनता बायो गैस संयन्त्र पर एक निश्चित सुधार है तथा स्थान के सदुपयोग, निर्माण की सुविधा तथा लागत की दृष्टि से ग्रामीण निवासियों के लिए अधिक सुविधाजनक है। इसके निर्माण की समस्त सामग्री ग्रामों में ही उपलब्ध हो सकती है। हम यह आशा करें कि यह संयन्त्र अधिक लोकप्रिय हो सकेगा तथा एक स्वच्छ, स्वस्थ एवं उन्नत ग्रामीण आर्थिक जीवन के निर्माण की दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकेगा। □

अन्धापन दूर करने की दिशा में प्रयास

[वर्ष 1981-82 में भारत में अंधेपन के निवारण और नियंत्रण के लिए 37 प्रशिक्षण केन्द्र खोले जाएंगे। ऐसा 1976 में प्रारंभ किए गए राष्ट्रीय स्वास्थ्य कार्यक्रम के अन्तर्गत किया जाएगा। यह प्रशिक्षण केन्द्र 30 चुने हुए मेडिकल कालिजों और 6 क्षेत्रीय संस्थानों में तथा एक मुख्य संगठन में स्थापित किए जाएंगे।

45 चलती-फिरती नेत्र चिकित्सा इकाइयां स्थापित की जा चुकी हैं और नेत्र चिकित्सा सेवा को बेहतर बनाने के लिए 996 प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों, 137 जिला अस्पतालों, 26 मेडिकल कालिजों एवं 4 क्षेत्रीय संस्थानों को उपकरण एवं अन्य सामान दिया जा चुका है।]

अन्धापन भारत में एक गंभीर समस्या है जिसके अपने आर्थिक एवं सामाजिक प्रभाव हैं। भारतीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद के सर्वेक्षण के अनुसार देश में लगभग 90 लाख अन्धे व्यक्ति हैं। इसके अतिरिक्त लगभग 4.5 करोड़ व्यक्ति ऐसे रोगों से ग्रस्त हैं कि उनकी नेत्र ज्योति अत्यन्त क्षीण है। इनमें 55 प्रतिशत व्यक्ति मोतियाबिन्द से, 20 प्रतिशत व्यक्ति रोहों से, 1.20 प्रतिशत चोट के कारण, 2 प्रतिशत पोषक तत्वों की आहार में कमी के कारण, 0.50 प्रतिशत ग्लूकोज के कारण एवं 19.3 प्रतिशत अन्य कारणों से आंखों के रोग से ग्रस्त हैं। लगभग 50 लाख अंधे व्यक्ति शल्यक्रिया द्वारा ठीक हो सकते हैं, लेकिन देश में केवल 60 हजार शल्यक्रियाएं करने की व्यवस्था है।

मुख्य उद्देश्य

यह गंभीर स्थिति पिछले सालों में एक समग्र नेत्र सुरक्षा कार्यक्रम के अभाव तथा मुख्यतया ग्रामीण क्षेत्रों में प्रशिक्षित कार्यकर्ताओं की कमी के कारण उत्पन्न हुई है। 1976 में अन्धेपन के निवारण और नियंत्रण के लिए शुरू किए गए कार्यक्रम का उद्देश्य नेत्रहीनता एवं नेत्ररोग के पर्याप्त एवं सम्यक उपचार की सेवाएं उपलब्ध कराना है। इस कार्यक्रम को तीन स्तरों पर कार्यान्वित किया जाएगा।

पहले चरण में सामुदायिक स्वास्थ्य रक्षा योजना के अन्तर्गत चलती-फिरती इकाइयां गांवों में प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों एवं उपकेन्द्रों में कार्य करेंगी। माध्यमिक क्षेत्र में ये सेवाएं जिले एवं तहसीलों में स्थित चिकित्सालयों में उपलब्ध होंगी। केन्द्रीय क्षेत्र में मेडिकल कालिजों, राज्यों के नेत्र चिकित्सालयों, क्षेत्रीय संस्थानों एवं मुख्य केन्द्रों में नेत्र रोगों के उपचार के लिए कार्यकर्त्ताओं को प्रशिक्षित किया जाएगा एवं इस दिशा में अनुसंधान कार्य होगा।

राष्ट्रीय कार्यक्रम में नेत्र रोगों की रोकथाम के लिए ग्राम स्तर एवं उसके ऊपर की कार्यवाही की व्यवस्था है। स्वास्थ्य सेवक ग्राम स्तर पर प्राथमिक चिकित्सा की व्यवस्था करेगा और उपकेन्द्रों में यह कार्य बहुद्देशीय कार्यकर्ता द्वारा किया जाएगा। प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों और जिला चिकित्सालयों में उन रोगियों का उपचार होगा जिनको वहां पर भेजा जाएगा। मुख्य प्रस्ताव यह था कि 5000 प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों में प्रत्येक पर एक नेत्र चिकित्सा सहायक हो।

राज्य सरकारों की भूमिका

इस कार्यक्रम के प्रारंभ से ही राज्य सरकारों से अपेक्षा की गई थी कि उनके द्वारा कर्मचारियों पर होने वाले आवर्त्ती व्यय एवं चालू खर्चे के लिए पर्याप्त धन की व्यवस्था की जाएगी। अधिकांश मामलों में राज्य सरकारों को केन्द्र द्वारा बेहतर सुविधाओं के लिए उपकरण प्रदान करने पर होने वाले व्यय से भी अधिक खर्च करना होगा।

राज्यों को विभिन्न स्वास्थ्य कार्यक्रमों में अपने द्वारा निर्धारित वरीयताओं के कारण इस कार्यक्रम के लिए वांछित मात्रा में धन जुटाने में कठिनाई हुई। इस कारण से कार्यक्रम के संचालन में अड़चन पैदा हुई। दूसरी अड़चन 1979–80 में पैदा हुई जब कि केन्द्र द्वारा इस कार्यक्रम के लिए शतप्रतिशत धन उपलब्ध कराने के स्थान पर इस पर होने वाले व्यय को दो बराबर भागों में केन्द्र और राज्य सरकारों के बीच बांटने का निर्णय लिया गया। नेत्र रोगों की उपयुक्त चिकित्सा के लिए सम्यक रूप से दीक्षित कार्यकर्ताओं की कमी भी इस योजना के कार्यान्वियन में आड़े आई।

इस कार्यक्रम को तेजी से लागू करने और प्रभावी बनाने के लिए स्थापित एक कार्यकारी दल की सिफारिशों के अनुसार अब इसके लक्ष्यों को और यथार्थवादी बना दिया गया है। प्रत्येक सचल इकाई का शल्यक्रियाओं का लक्ष्य घटाकर 1500-2000 प्रति वर्ष कर दिया गया है। स्वैच्छिक संस्थाओं को निर्धारित निर्देशों के अनुसार आंखों के शिविर लगाने के लिए अनुदान देने की व्यवस्था को भी उदार बना दिया गया है।

केन्द्र द्वारा आयोजित कार्यक्रम

वर्ष 1981–82 से इस कार्यक्रम के लिए केन्द्र शतप्रतिशत सहायता देगा। वर्ष 1981–82 में भारत में अंधेपन के निवारण और नियंत्रण के लिए 37 प्रशिक्षण केन्द्र खोले जाएंगे। ऐसा 1976 में प्रारंभ किए गए राष्ट्रीय स्वास्थ्य कार्यक्रम के अन्तर्गत किया जाएगा। यह प्रशिक्षण केन्द्र 30 चुने हुए मेडिकल

(शेष पृष्ठ 20 पर)

खाद्य भंडारण तथा वितरण

भारत सरकार की खाद्य प्रबंध व्यवस्था का मुख्य उद्देश्य मौसम पर फसल की निर्भरता में कमी और जनता के सतत कल्याण के लिए प्रयास हैं। सूखा जैसे प्राकृतिक संकट समाप्त तो नहीं किए जा सकते, लेकिन पर्याप्त क्षमता का विकास कर उनका सामना सफलतापूर्वक किया जा सकता है। इसके लिए पूरी तैयारी की आवश्यकता है। इस दिशा में हमने पर्याप्त प्रगति की है।

वर्ष 1966 में भंयकर सूखा के कारण सरकार को 100 लाख टन खाद्यान्न का आयात करना पड़ा। 1972 में पुनः भयंकर सूखे की पुनरावृत्ति हुए लेकिन इस चुनौती का सामना सरकार ने पिछले सालों में बनाए गए खाद्यान्न के सुरक्षित भंडार से किया। 1979 और 1980 में भी सूखा की गंभीर स्थिति ने सार्वजनिक वितरण प्रणाली पर भारी दबाव डाला। इसके लिए उचित दर की दुकानों और काम के बदले अनाज योजना के माध्यम से 264 लाख टन खाद्यान्न का वितरण हुआ। यह खाद्यान्न वर्ष प्रति वर्ष बनाए गए सुरक्षित भंडार से उपलब्ध किया गया। 1966 और 1980 के बीच सरकार ने खाद्यान्न प्रबन्ध व्यवस्था में सुधार और सार्वजनिक वितरण प्रणाली को सुदृढ़ कर ऐसे उपाय किए हैं कि किसी भी चुनौती का सामना किया जा सकता है। इस प्रकार एक ऐसी पद्धति का विकास हुआ है जिसमें खाद्यान्न के क्षेत्र में जनता को सुरक्षा मिल सके।

खाद्यान्न के क्षेत्र में सुरक्षा के दो पहलू हैं :—लोगों की, विशेषकर कम आय वाले उपभोक्ताओं की, आज की आवश्यकता को उचित मूल्य पर पूरा करना और कल की आवश्यकताओं के लिए खाद्यान्न के पर्याप्त सुरक्षित भंडार का निर्माण करना। इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए देश में अनाज के उत्पादन और उत्पादकता में सतत वृद्धि अनिवार्य है। उत्पादन तब ही बढ़ सकता है जबकि किसान को उसकी फसल का लाभकारी मूल्य मिले। आपस में एक दूसरे से जुड़े इन लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए निम्न उपाय करने होते हैं :—

- किसानों से समर्थन मूल्य पर अनाज की खरीद। संचालनात्मक दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थानों में अनाज का भंडारण।
- सार्वजनिक वितरण प्रणाली को चालू रखने के लिए देश भर में एक स्थान से दूसरे स्थान तक अनाज के परिवहन की व्यवस्था।
- आपातकालीन एवं चालू आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अनाज के पर्याप्त सुरक्षित भंडार का निर्माण।
- जनता के खाने योग्य अनाज की शुद्धता सुनिश्चित करना।

उपरोक्त सभी कार्य महत्वपूर्ण होने के कारण सरकार पर उत्तरदायित्व भी बढ़ जाता है।

समर्थन मूल्य पर किसानों से खरीद

हर साल रबी और खरीफ की फसलों के समय सरकार खाद्यान्नों की खरीद के लिए समर्थन मूल्यों की घोषणा करती है। इन मूल्यों के माध्यम से सरकार किसानों को और अधिक उत्पादन के लिए प्रेरित करती है और उनको संकट की स्थिति में कम कीमत पर अपने उत्पादन को बेचने से बचाती है। विभिन्न सरकारी एजेंसियां गांवों में मंडियों में जाकर अनाज की खरीद करती हैं। 1965 में स्थापित भारतीय खाद्य निगम अनाज व्यापार के क्षेत्र में खरीद, भंडारण, परिवहन और वितरण के लिए अकेला सबसे बड़ा सरकारी प्रतिष्ठान है। निगम के 135 जिला कार्यालयों, 2044 भंडारण केन्द्रों, 130 अनाज परीक्षण प्रयोगशालाओं आदि का देश भर में जाल बिछा हुआ है। इसके अतिरिक्त फसलों के समय देश भर में हजारों अस्थायी खरीद केन्द्र भी खोले जाते हैं। राज्य सरकारों की इकाइयों द्वारा खरीदा गया अनाज भी भारतीय खाद्य निगम को सौंप दिया जाता है जिसके सार्वजनिक वितरण के लिए केन्द्रीय सुरक्षित भंडारों में अनाज सुरक्षित और शुद्ध रह सके। अनाज की खरीद मांग के अनुसार बढ़ती रही है और किसानों की रुचि भी उत्पादन बढ़ाने में बनी हुई है। इसका प्रमाण यही है कि देश में अनाज का उत्पादन, केवल सूखे आदि की अवधि को छोड़कर, वर्ष प्रति वर्ष बढ़ा है।

बढ़ती हुई मांग को पूरा करने के बाद भी हमारे पास अन्न का पर्याप्त सुरक्षित भंडार है, लेकिन फिर भी सरकार ने 15 लाख टन गेहूं के आयात का निर्णय किया। इस निर्णय के विषय में प्रधानमंत्री ने कहा कि "हमें पता है कि देश में अन्न की जमाखोरी कर कीमतें बढ़ाने की कोशिश की जा रही है। इससे अनेक लोगों, विशेषकर गरीबों और दूरदराज के क्षेत्रों में रहने वालों को परेशानी होगी। यही कारण है कि तुरन्त आवश्यकता न होते हुए भी यह निर्णय लिया गया क्योंकि इस समय गेहूं विदेशों में कम कीमतों पर आसानी से उपलब्ध है और हमको सदैव समस्याओं का मुकाबला करने के लिए तैयार रहना चाहिए।"

एक सुदृढ़ सार्वजनिक वितरण प्रणाली और सुरक्षित अन्न भंडार का ही यह प्रतिरोधक प्रभाव था कि भारत में गेहूं और चावल की थोक कीमतों में वृद्धि क्रमशः 70 प्रतिशत और

101 प्रतिशत तक ही सीमित रही जबकि अन्य वस्तुओं की कीमतें 147 प्रतिशत बढ़ गई।

खेतों से उचित दर की दुकानों तक

200 विशेष मालगाड़ियां, 15000 वैगनों में देश के विभिन्न भागों में भारतीय खाद्य निगम का अनाज प्रत्येक वर्ष 13 लाख किलोमीटर की दूरी तय कर ढोती हैं। अनाज ढोने के इस वृहत प्रयास में मालगाड़ियों के अतिरिक्त हजारों ट्रक, जलयान और हवाई जहाज तक लगे रहते हैं। मंडियों से खरीदा अनाज निगम के भंडारों और गोदामों में विभिन्न स्थानों में पहुंचाया जाता है। भारत सरकार का खाद्य विभाग प्रत्येक राज्य और संघीय क्षेत्र के लिए मासिक कोटा निर्धारित करता और निगम इन निर्णयों के अनुसार अनाज समय पर निर्धारित स्थान तक पहुंचाने की व्यवस्था करता है। 1979 और 1980 के सूखे के समय निगम ने देश के उत्तरी भाग से अन्य भागों तक 100 लाख टन अनाज पहुंचाकर एक अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की। मार्च और अप्रैल, 1981 में 9.97 लाख टन गेहूं और चावल का रिकार्ड लदान हुआ और अप्रैल, 1981 में यह मात्रा बढ़कर 10.98 लाख टन हो गई।

सारा अनाज पहले गोदामों में जाता है जहां से इसे वितरण करने वाली इकाइयों तक पहुंचाया जाता है। उचित दर की दुकानों तक पहुंचने से पहले अनाज को दो जगह भंडारों में रखा जाता है। इस प्रकार लगभग 220 लाख टन अनाज के एक साथ भंडारण के लिए सुरक्षित और वैज्ञानिक व्यवस्था की आवश्यकता होती है। 1965 में भारतीय खाद्य निगम की मुख्य भंडारण क्षमता 6 लाख टन की थी जो अब बढ़कर 206 लाख टन हो गई है। भंडारण के लिए अपनी सुविधाओं के अतिरिक्त, निगम केन्द्रीय भंडारण निगम, राज्य भंडारण निगमों और निजी क्षेत्र के गोदाम भी किराए पर लेता है।

उपभोक्ता के हित में

खरीद, भंडारण और परिवहन के सारे प्रयासों का उद्देश्य आम आदमी को अनाज उसकी सामर्थ्य के अनुसार कीमत पर उपलब्ध कराना है। गांव या शहर जहां भी वह है उचित दर की दुकान से उसको अनाज का नियतांश मिलना चाहिए।

उचित दर की दुकान देश में हर जगह फैली सार्वजनिक वितरण व्यवस्था का प्रतीक है जो सरकार और आम आदमी को जोड़ने वाली कड़ी का काम करती है। देश में 297 हजार उचित दर की दुकानों में से 238 हजार दुकानें ग्रामीण क्षेत्रों में हैं। दुकानों की स्थापना के इस ढंग से स्पष्ट है कि सरकार सार्वजनिक वितरण प्रणाली का लाभ कमजोर वर्ग को विशेष रूप से दिलाना चाहती है।

उपभोक्ता को उचित दर की दुकान पर अनाज कम कीमत पर मिलता है। उदाहरण के लिए भारतीय खाद्य निगम ने 1980-81 में मंडी में किसानों से गेहूं 130 रुपये प्रति क्विंटल के भाव से खरीदा। इसके अतिरिक्त निगम को इस एक क्विंटल गेहूं पर मजदूरी, मंडी टैक्स, बोरी का मूल्य, अस्थायी भंडारण का किराया आदि पर 26 रुपये और व्यय करना पड़ा। इसके अतिरिक्त इस गेहूं को मंडी से गोदाम तक ले जाने का किराया, भंडारण का खर्च, प्रशासनिक व्यय, बैंकों से खरीद आदि के लिए लिए गए ऋण पर ब्याज आदि के कारण प्रति क्विंटल 28 रुपये और खर्चा होता है। इस प्रकार वितरण इकाई तक पहुंचने पर एक क्विंटल गेहूं की कीमत निगम को 184 रुपये पड़ती है। लेकिन निगम वितरण इकाइयों से एक क्विंटल गेहूं का मूल्य केवल 145 रुपये लेता है। यह दर सरकार द्वारा निश्चित की गई है जबकि मंडी में खरीद तक ही निगम को इससे अधिक खर्चा हो जाता है। सरकार उपभोक्ता को उस कीमत पर अनाज उपलब्ध कराना चाहती है जितनी उसकी सामर्थ्य में है। इसलिए सरकार ने उपभोक्ता से ली जाने वाली कीमत एक क्विंटल पर हुए वास्तविक खर्चे से 39 रुपए कम रखी है। भारतीय खाद्य निगम को सरकार वास्तविक खर्च और उपभोक्ता से प्राप्त मूल्य के अंतर के बराबर राशि अनुदान के रूप में दे देती है। चावल के लिए इसी प्रकार 30 रुपये प्रति क्विंटल अनुदान राशि सरकार द्वारा दी जाती है। इस सारे संचालन में निगम का प्रशासनिक खर्चा केवल एक प्रतिशत ही है। भंडारण, परिवहन और लदान आदि विभिन्न प्रक्रियाओं में इतनी बड़ी मात्रा में अनाज की व्यवस्था करने पर भी क्षति एक प्रतिशत से अधिक नहीं होती। □

अंधापन दूर करने की दिशा में प्रयास [पृष्ठ 18 का शेषांश]

कालिजों और 6 क्षेत्रीय संस्थानों में तथा एक मुख्य संगठन में स्थापित किए जाएंगे। 45 चलती-फिरती नेत्र चिकित्सा इकाइयां स्थापित की जा चुकी हैं और नेत्र चिकित्सा सेवा को बेहतर बनाने के लिए 996 प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों, 137 जिला अस्पतालों, 26 मेडिकल कालिजों एवं 4 क्षेत्रीय संस्थानों को उपकरण एवं अन्य सामान दिया जा चुका है।

अकेले सरकार द्वारा अंधेपन की समस्या का निराकरण नहीं हो सकता। इसी उद्देश्य से स्वैच्छिक संस्थाओं को ग्रामीण क्षेत्रों में नेत्र शिविर लगाने के लिए उदार रूप से वित्तीय सहायता दी जाएगी। इस कार्यक्रम के बेहतर कार्यान्वयन के उद्देश्य से राज्य सरकारों और स्वैच्छिक संस्थाओं के बीच और अच्छे तालमेल के लिए राज्य स्तर पर अधिकारियों की व्यवस्था की गई है।

अंधेपन के नियंत्रण के लिए राष्ट्रीय कार्यक्रम देश के सामाजिक एवं आर्थिक सुधार के लिए अत्यन्त लाभकारी है। बेहतर साधनों द्वारा उपलब्ध और अच्छी सुविधाओं से आशा है कि 1985 तक देश में नेत्रहीनता वर्तमान 1.4 प्रतिशत से घटकर 1 प्रतिशत रह जाएगी। □

दहेज एक ऐच्छिक भूल

दोषी कौन ?

मृदुला सिन्हा

आए दिन अखबारों में छपी, दुल्हन जला देने, नववधू द्वारा आत्म-हत्या करने, उन्हें पति के घर से निकाल देने की अन्यान्य खबरें हमें रोमांचित कर देती हैं। लड़का एवं उसके घरवालों द्वारा लड़कियों पर की गई ज्यादतियों से मन भिन्ना उठता है। नवयुवतियों एवं उसके मां-बाप के प्रति जहां सहानुभूति जाग्रत होती है वहीं अनजाने ही लड़के एवं लड़केवालों के प्रति क्रोध एवं घृणा से भर उठता है हमारा मन। कुछ प्रश्न भी उठ खड़े होते हैं। इन समाचारों में कितनी सच्चाई है? क्या ये हत्याएं, आत्म-हत्याएं अथवा अलगाव महज दहेज के कारण हो रहे हैं?

मान लिया जाए कि दहेज ही अधिकांश घटनाओं में प्रमुख कारण रहता है तो लड़की अथवा लड़का, कोई एक पक्ष को पूरी समस्या का कारण मानें क्या? एक पक्ष हमारी सहानुभूति अथवा घृणा का पात्र क्यों बनें? हम स्वयं क्यों नहीं? समाज क्यों नहीं? दोनों पक्ष क्यों नहीं? दहेज दुर्घटनाओं को सामाजिक विघटन की अन्य समस्याओं से अलग करके देखें क्या?

मानना होगा कि दहेज परम्परा से क्रमशः बढ़ता हुआ सामाजिक अपराध है जो देखते-देखते संक्रामक नासूर बन गया है। यह कोई दैविक प्रकोप अथवा राज-नैतिक दबाव नहीं, यह तो सामाजिक स्वीकृति से लड़के-लड़कियों एवं उनके मां-बाप द्वारा की गई ऐच्छिक भूल है। समाज ने इस अपराध को करने वालों को ही प्रोत्साहित किया है। जो मजबूरी-वश यह अपराध नहीं कर पाते उन्हें ही निन्दित किया है।

कभी सरकार तो कभी समाज को ध्यान आता है कि शायद लड़की वालों पर ज्यादती हो रही है। सरकार दहेज देने अथवा लेने वालों को दंडित करने हेतु सख्त कानून बनाना चाहती है तो समाज द्वारा ऐसे दहेज लोभी लोगों का सामाजिक बहिष्कार क्यों नहीं। पर लगता ऐसा है कि मर्ज़ बढ़ता गया ज्यों-ज्यों दवा की। दरअसल दवा करता कौन है? महज़ डाक्टर एवं शुभचिन्तकों द्वारा दवा की लम्बी फहरिश्त बना देने से ही तो रोग मिटता नहीं। रोगी को दवा का सेवन तो करना ही होगा। एक दूसरे पर दोषा-रोपण करने से भी समस्या का समाधान न होगा। हम एक-एक पक्ष को देखें कौन कितना दोषी है? रोग को फैलाने में किसका कितना योगदान है?

लड़की वाले—दहेज रूपी रोग से बुरी तरह प्रभावित होने वाले लड़की के मां-बाप का भी इसे बढ़ाने में योगदान कम नहीं। मां-बाप चाहता है कि उसकी लड़की उससे ऊंचे घराने में जाए। ऊंचे घराने से तात्पर्य पहले तो खानदान, परिवार से होता था, आज महज आर्थिक आधार है। कौन कितना अधिक पैसा कमाता है, किसका लड़का अधिक सुन्दर एवं होनहार है, किसकी सामाजिक प्रतिष्ठा अधिक है, लड़के के मां-बाप की पहुंच कहां तक है, आदि अन्यान्य मुद्दे होते हैं लड़की के माता-पिता के चिन्तन के। लड़की में यदि कोई नुख्श भी है तो उसे वे धन से ही ढक देना चाहते हैं। अति-शयोक्ति न होगी कि जिसकी लड़की बदसूरत अथवा मंदबुद्धि की होती है वे अधिक से अधिक दान-दहेज देने की सोचते हैं, देते भी हैं ताकि लड़केवालों के मुंह बंद कर सकें जो कभी भी संभव नहीं होता। लड़के वालों ने उनकी नब्ज पकड़ ली तो छोड़ें क्यों? उनकी मांग बढ़ती जाती है। लड़की तो सुखी होने से रही।

स्वयं लड़कियों में जेवर-जेवरात, अच्छे कपड़े एवं अन्यान्य शान-शौकत के प्रति भी ललक रहती है। कौन लड़की नहीं चाहती कि उसके ललक की पूर्ति न हो। लड़कियां भी दहेज चाहती हैं और मांगती भी हैं। प्रदर्शन का भाव भी लड़कियों में कूट-कूटकर भरा है। हमारे मायके से इतना मिला, हमारे ससुराल से इतना मिला, मेरे पास इतने सारे गहने एवं कपड़े हैं आदि चर्चा के विषय होते हैं महिलाओं के बीच। आजकल की पढ़ी-लिखी युवतियां भी इससे वंचित नहीं। सच पूछिए तो अधिकांश लड़कियां मायके से मिले सामान के बल पर ही ससुराल में अपना प्रभुत्व जमाना चाहती हैं। घर में आई अन्य महिलाओं से एक तुलनात्मक भाव भी रहता है। तभी तो दंतविहीन पोपले मुंह को भी हिला-हिलाकर औरतें अपनी विलक्षण स्मरण शक्ति की दाद देती हुई अपनी शादी में अथवा शादी के बाद अब तक मायके से मिले सामान की पूरी सूची कंठाग्र सुना देती हैं। भूल से भी एक सूई की संख्या नहीं छूट सकती। दुर्भाग्य से उसकी बहू के माता-पिता ने बेटी ब्याहने के पहले सास के मायके से मिले सामानों की सूची न देख ली हो तो समझिए सामत आई उस बहू पर। सास बहू के बीच एक पीढ़ी के अंतराल के बावजूद दोनों मैके की तुलनात्मक प्रक्रिया में समानान्तर आ बैठती हैं।

सास की गद्दी पर बैठी बात-बात में बहू के मायके की खिल्ली उड़ाती महिला

भूल जाती है कि वह भी किसी लड़की की मां है। अपनी लड़की के साथ वैसा ही सलूक होने पर बौखला उठती है।

लड़के वालों के तो कहने ही क्या? जिस दिन घर में लड़का पैदा होता है, सुनते हैं, उसके जन्म पर धरती ही एक मुट्ठी उठ जाती है। लड़के के मां-बाप के मनसूबे बढ़ना स्वाभाविक ही है। लड़के के जन्म के साथ ही मां-बाप उसे बेचने की योजना बनाने लगते हैं। आज दहेज को लोग सामाजिक प्रतिष्ठा का विषय बना बैठे हैं। गांवों में लोग लड़के की शादी में जितना मिलता है उससे कहीं ज्यादा रकम एवं सामान मिलने का दंभ भरते हैं। गांव-मुहल्ले में दहेज में मिले सामानों का बाकायदा प्रदर्शन होता है।

लड़कों को पढ़ाने-लिखाने के पीछे भी उसे अधिक रकम में बेचने का ही भाव रहता है। निश्चय ही एक उच्च शिक्षा प्राप्त बेटे को कम मूल्य में बेचकर घाटे का सौदा कौन करे? लागत भी न वसूल पाए तो अपनी हार का एहसास तो होगा ही। देखा जाता है कि वैसे माता-पिता जिनके सुपुत्र पढ़ने-लिखने में बेकार हैं उनका नामांकन विद्यालय अथवा कालेज में तब तक कराए रखते हैं जब तक उनकी शादी न हो जाए।

अयोग्य लड़के भी डोनेशन से विभिन्न संस्थाओं में धकेले जाते हैं। डोनेशन की सारी राशि सूद-दर-सूद के साथ लड़की वालों से वसूलने की योजना रहती है। इतना ही नहीं, अपनी भी दो-तीन लड़कियों की शादी करनी है। उनकी शादी की रकम भी बेटे के ससुराल से मिल जाए तो क्या हर्ज है।

आज की दुनिया में नित नए उपभोग की वस्तुएं आविष्कृत हो रही हैं। इन वस्तुओं को महज अपनी सीमित कमाई से प्राप्त करना किसी के बूते की बात नहीं। जो जहां बैठा है, हाथ जहां तक पहुंच जाए लपककर दूसरे से छीनने की प्रवृत्ति देखी जा रही है। लड़की के मां-बाप से भी रिश्वत लेते कोई झिझक नहीं होती। लोभ का संवरण कठिन होता है।

स्वयं लड़के लड़कियां—केवल मां-बाप ही दोषी नहीं। एक तो लड़कियों में शिक्षा की कमी है ही। शिक्षित लड़कियों में भी इतनी हिम्मत नहीं कि वे दहेज लोलुप लड़कों से शादी करने से इन्कार करें। देखा गया है कि पढ़ी-लिखी नौकरी करती लड़कियों को भी अपने मां-बाप से दहेज के अलावा कुछ न कुछ मौके-बेमौके वसूलने के लिए बाध्य किया जाता है।

लड़के क्यों पीछे रहें? अत्याधुनिक लिबास एवं ढंग में लिपटे नवयुवकों में भी इतनी हिम्मत नहीं कि लीक से हट-कर चल सकें। माता-पिता के लोभ को नाकार सकें। जितना हो सकता है वे ससुराल से वसूलना चाहते हैं। यदि शादी के बाद भी ससुराल वाले उनकी ख्वाहिश पूरी करते गए तो उनको लत-सी पड़ जाती है। वैसे भी हमारे समाज में पुरुषों में अपने को स्त्री से ऊंचा देखने की प्रवृत्ति है। सच तो यह है कि बुद्धि, विवेक के अलावा शारीरिक क्षमता में भी वे महिलाओं से पीछे ही हैं। वे सोचते हैं कि स्त्रियों से शादी कर वे उनका कल्याण कर देते हैं। जीवनपर्यंत पत्नी एवं उनके माता-पिता को एहसानमंद रहना चाहिए। अपने एहसान के बदले में चाहे जो भी दान-दक्षिणा मिले, कम ही है। अपनी परम्परा में कन्या-दान का बड़ा महत्व माना गया है। लड़की वाले इस दान के साथ दक्षिणा तो देंगे ही। दक्षिणा की कोई सीमा निर्धारित नहीं। दान-दक्षिणा देने वालों की मर्जी से होती थी लेकिन आज लड़के पहले दक्षिणा की रकम स्वीकार करते हैं फिर दान।

समाज—लड़का पक्ष एवं लड़की पक्ष के अलावा उनके इर्द-गिर्द समाज भी इस अपराध को बढ़ावा दे रहा है। लड़के-लड़कियों का विवाह एक संस्कार माना जाता रहा है। समाज के विभिन्न तबके के लोगों की उपस्थिति महज उन दोनों के संकल्प की साक्षी बतौर मानी जाती था। आज शादियों में विशेष आडंबर बढ़ गया है। भोज-भात, साज-सजावट, बाजे-गाजे सब बढ़ते जा रहे हैं। सारा का सारा खर्च लड़की वाले के ऊपर ही पड़ता है। कोई भी लड़की वाला अपनी हैसियत से ज्यादा ही खर्च करता है। क्योंकि समाज द्वारा तभी उसे प्रतिष्ठा मिलती है। समाज में कितने लोग हैं जो साधारण ढंग से किए गए विवाह की सराहना करते हैं? अव्वल तो सारे धूमधाम एवं भोज-भात में कोई न कोई नुक्स ही निकाल बैठते हैं। लड़का एवं लड़की वाले समाज में अपनी झूठी शान जमाने के लिए सारे कुछ आडंबर करते हैं। शादी विवाह एक संस्कार न होकर एक दिखावा, एक ढकोसला हो गया है।

हमारे देश में समाज सुधारक से लेकर नेतागण सब उस समारोह में सम्मिलित होते हैं, उन्हें बढ़ावा देते हैं। कोई इस आडंबर को सामाजिक अपराध मानकर इसे त्यागता नहीं। सब लोग संस्कृति के दोराहे पर खड़े हैं। एक ओर हम अत्याधु-निकता की बातें करते हुए भी घोर पुरातनपंथी हैं।

दहेज को बढ़ावा देने में समाज का वह वर्ग सबसे ज्यादा जिम्मेदार है जिनकी कमाई के जरिए अनेक हैं। वह वर्ग बड़ी सहजता से अपनी लड़की के लिए दहेज इकट्ठा कर लेता है। मनचाही रकम कमाना उनके लिए आसान भी है। लड़कों का मार्केट गर्म हो उठता है। बिहार के किसी शहर में मैंने मध्यवर्गीय लड़की वालों के बड़े व्यथित शब्द सुने-इंजीनियर्स, डाक्टर तथा अन्यान्य आफिसर्स, मिनिस्टर जैसे नवधनिकों ने लड़कों के भाव बढ़ा दिए हैं। मानना होगा कि यहां भी मुद्रा-स्फीति की समस्या उत्पन्न हो गई है। साधारण एवं ईमानदार लड़की वाले जहां मारे जाते हैं वहीं पढ़े-लिखे अच्छे लड़के, सुघड़ एवं सुन्दर पत्नियों के सुख से वंचित रह जाते हैं।

सरकार एवं कानून—सच पूछिए तो सख्त से सख्त कानून इस रोग की दवा नहीं बन सकती। कितने लोग हैं जो कानून की शरण लेना चाहते हैं? कानून भी इतना पेचीदा है कि कहां मिलता है न्याय? फिर भी इस मामले में जो भी कानून हैं वह अस्पष्ट हैं। कानून की नजर में दहेज लेने एवं देने वाला दोनों दोषी माने जाएंगे। दोष साबित होना ही बड़ा मुश्किल होगा। वैसे भी 1961 में बने "दहेज विरोधी कानून 1961" के बाद केवल एक केस पटना हाईकोर्ट से खारिज होने की रिपोर्ट है।

पैतृक संपत्ति में लड़की के हिस्सेदारी की बात भी अस्पष्ट एवं अव्यावहारिक है।

रोग मनोवैज्ञानिक है—दहेज देने वालों की आर्थिक स्थिति में कोई सुधार अथवा अन्तर नहीं हो जाता। लड़की वालों के खून-पसीने से निचोड़ा पैसा तो यूं ही उड़ जाता है। फिर भी अपने अहम् की तुष्टि के लिए लड़के वालों को दहेज चाहिए। लड़की वाले भी अपनी जायदाद में लड़की का हिस्सा समझ ही कुछ न कुछ देते रहते हैं।

यह रोग भी समाज के अनेक रोगों की तरह मध्यम वर्ग को ही तबाह कर रहा है। मध्यमवर्ग इस रोग को बड़ी कठिनाई से ढो रहा है। इससे बचने का किसी को कोई उपाय नहीं सूझ रहा है।

निदान—दहेज की समस्या महज भाषण से सुलझने वाली नहीं। दो चार दोषियों को दंड देने से रुकने वाली नहीं। सचमुच दोषी एक तो है नहीं? यहां तो किसी न किसी रूप में सब जिम्मेवार हैं। युवा पीढ़ी पर सबकी नजर लगी है। उनके दिमाग में स्वावलंबन की बात घुसे, लड़का-लड़की दोनों को जीवन-साथी के चुनाव की स्वतंत्रता हो, कानून की नजर में दहेज की परिभाषा स्पष्ट हो दोषी को सख्त दंड देने का विधान हो, तब जाकर कुछ बात बने। सबसे ऊपर लोगों के दिल से आत्म-प्रवंचना की बात हटे। हर ओर अपनी आर्थिक स्थिति जितनी है उससे अधिक दिखाने के भाव नजर आते हैं। चतुर्दिक पहल होनी चाहिए। समस्या सामाजिक है। पूरे समाज को पहल करने की आवश्यकता है। हर मोड़ पर खड़ा व्यक्ति अपने को समाज का एक अंग तो माने। उसके क्रियाकलापों से समाज सिहरता है, डोलता है, क्षत्-विक्षत् हो उठता है, उसे एहसास तो हो। □

खादी ग्रामोद्योग आयोग

- खादी ग्रामोद्योग आयोग ग्रामीण भारत को समृद्ध बनाने के लिए प्रतिबद्ध है।
- यह खादी और 24 अन्य ग्रामोद्योगों के जरिये 30 लाख से अधिक ग्रामीणों को रोजगार प्रदान करता है।
- खादी और ग्रामोद्योगी उत्पादन खरीद कर ग्रामीण भारत के विकास में आप भी सहभागी बनें।
- खादी और ग्रामोद्योग आयोग ने ग्रामीण कारीगरों को नयी तकनालाजी देकर उनकी उत्पादकता और आय बढ़ायी है।
- ग्रामीण क्षेत्र में हो रहे विकास की नित-नवीन जानकारी प्राप्त करें।

* पढ़िए *

खादी ग्रामोद्योग

ग्रामीण अर्थ विषयक मासिक पत्रिका

और

जागृति

ग्रामोन्नयन विषयक समाचार पाक्षिक।

दोनों ही हाथ कागज मद हिन्दी और अंग्रेजी में प्रकाशित : प्रत्येक का वार्षिक शुल्क : 10 रुपये

नमूने की प्रति आज ही मंगायें।

निर्देशक, प्रचार लोकशिक्षण,

खादी ग्रामोद्योग कमीशन, बंबई-400056.

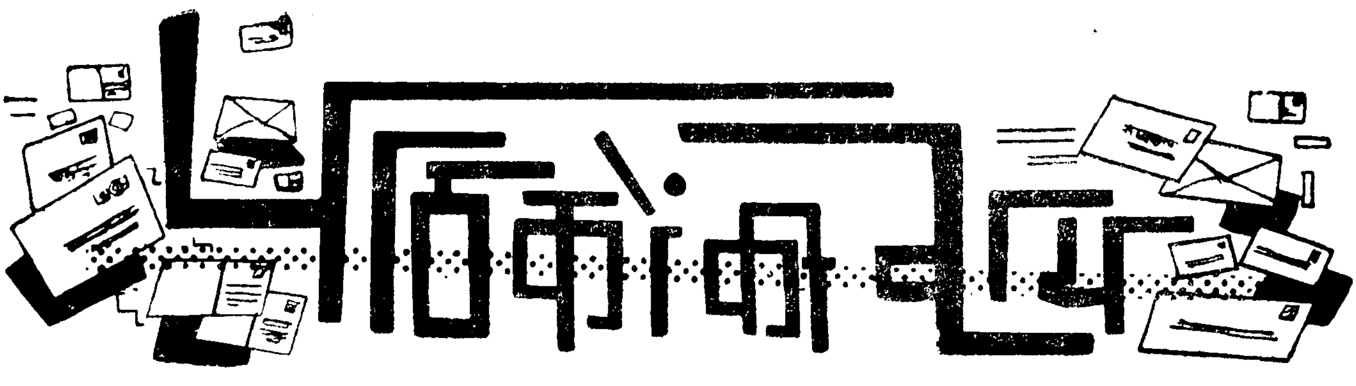

ग्रामीण विकास में पुस्तकालयों तथा वाचनालयों का योगदान

विमला बी० गुप्ता

किसी भी प्रकार के पुस्तकालय का योगदान इस बात पर निर्भर करता है कि वह अपने पाठकों की किस हद तक सेवा करता है। भारत एक कृषि प्रधान देश है। लगभग 80 प्रतिशत जनता गांवों में रहती है। उनका व्यवसाय खेती करना है और उसके द्वारा प्राप्त आय से अपना तथा अपने परिवार का भरण पोषण करना है। उन्हें शिक्षा से क्या काम। वे यह भूल जाते हैं कि शिक्षा द्वारा ही वे नए-नए आविष्कृत यन्त्रों का सदुपयोग कर सकते हैं। एक व्यस्त किसान के लिए स्कूल, कालेज, यूनिवर्सिटी की शिक्षा बहुत ही असंभव है। इन संस्थाओं में शिक्षा प्राप्त करना उसके लिए स्वर्ग के ख्वाब देखने के समान है। अतः प्रौढ़ शिक्षा के प्रसार द्वारा उन्हें पढ़ना-लिखना सिखाया जा सकता है और उन्हें शिक्षित करने में पुस्तकालय और वाचनालय बड़ा भारी योगदान कर सकते हैं। ग्राम जीवन की उपयोगी पुस्तकों तथा पत्रिकाओं को पढ़ कर सुनाने की व्यवस्था यदि प्रतिदिन कुछ समय के लिए कर दी जाती है तो इससे निरक्षर लोगों को भी शिक्षा प्राप्ति के साथ-साथ पशुपालन, कृषि विपणन, सहकारिता, परिवार कल्याण आदि की जानकारी प्राप्त होगी। इससे ग्रामीणों का सच्चा हित होगा। यह डिग्री रहित शिक्षा है जो पुस्तकालयों में ज्ञानवर्द्धन के लिए प्राप्त होती है। पुस्तकालय ही एक ऐसी संस्था है जो एक व्यस्त किसान की समस्याओं का हल निकाल सकती है। पुस्तकालय की परिभाषा करते हुए यह कहा जा सकता है कि पुस्तकालय कुछ सीमित पुस्तकों का संग्रह मात्र ही नहीं, अपितु चेतना, प्रेरणा, सभ्यता और संस्कृति को विकसित करना तथा इतिहास को संभाल कर रखने वाला संरक्षक है। क्योंकि मानव उन्नति का साधन ही ये पुस्तकें हैं। कहा जाता है यदि किसी देश को गुलाम बनाना हो तो पहले उस देश की संस्कृति और सभ्यता की पुस्तकों को नष्ट कर दो, क्योंकि देशवासी की दृष्टि उन पुस्तकों पर पड़ेगी तो वह अपने को रोक न सकेगा और विद्रोह खड़ा कर देगा। एक पुस्तकालय जनता का, जनता के लिए, जनता द्वारा संचालित होने वाला ज्ञान भंडार है। यह सब धर्मों का, सब जातियों का, समान रूप से स्वागत करता है। उनकी ज्ञान पिपासा की तुष्टि करता है।

पुस्तकालय ही नए-नए उपकरणों के प्रयोग करने का मार्ग बता सकते हैं। समय पर होने वाली घटनाओं के विषय में ज्ञान दे सकते हैं। आने वाले संकटों से बचने की विधि बता सकते हैं। पुस्तकालय के माध्यम से साधारण कृषक अपने जीवन से संबंधित अनेकानेक विषयों का ज्ञान प्राप्त कर उनको अपने लिए अधिक उपयोगी बना कर प्रयोग करने में समर्थ होता है। साधारणतया ग्रामीण क्षेत्र में कृषि, पशुपालन तथा कुटीर उद्योग जीविका का आधार होते हैं। परम्परागत तरीकों से इनका संचालन अधिक प्रतिफल देने वाला नहीं होता। अतः पुस्तकालयों के माध्यम से नई-नई तकनीकी की जानकारी प्रत्येक क्षेत्र में उत्पादन को बढ़ाने में सहायक होती है जैसे कृषि, कुटीर-उद्योग, पशुपालन आदि। उत्तम कृषि के लिए उत्तम बीज, खाद तथा सिंचाई के प्रयोग का उत्तम तरीका. कुटीर उद्योग में टोकरी बनाना, कपड़ा तथा कालीन बुनना, मिट्टी के खिलौने बनाना, मुर्गीपालन, सुअर पालन और मछली पालन तथा पशुओं को बीमारी से बचाना आदि ऐसे विषय हैं जिनका ज्ञान ग्रामीणों के लिए बड़ा आवश्यक है। यह तभी संभव हो सकता है जब ग्रामीण शिक्षित हों और गांवों में पुस्तकालयों और वाचनालयों की व्यवस्था हो।

इसके अलावा, आज का किसान पुरानी रूढ़ियों, रीतिरिवाजों तथा अन्धविश्वासों से तभी मुक्ति पा सकता है जब वह शिक्षित होकर गांवों के पुस्तकालयों से लाभ उठाए। साहूकार उन्हें एक रुपया देकर दस रुपये वसूल करता है और वे साहुकारों की चालाकी समझ नहीं पाते। नतीजा यह होता है कि वे जीवन भर साहूकार के चंगुल में फंसे रहते हैं। ऐसी दशा में पुस्तकालय तथा वाचनालय उन्हें साहूकारों के हथ-कण्डों से अवगत करा सकते हैं और उन्हें बता सकते हैं कि उन्हें ऋण कहां से और कैसे मिल सकता है।

दूसरे, किसान वर्ष में काफी समय खाली

रहते हैं। फसल के दौरान भी बेरोजगारी के कारण खाली दिमाग शैतान का घर बन जाता है। इससे उनमें जुआ आदि बुराइयां भी पनपती हैं। ऐसे समय में वे वाचनालयों तथा पुस्तकालयों में पढ़ते-लिखते हुए अपना समय बिता सकते हैं। गांवों में आजकल चोरी-जारी, जुआ तथा शराब खोरी का जोर है और गन्दगी तथा बीमारी का बोल-बाला है। पुस्तकालयों में बैठ कर ऐसा ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है जिससे इन बुराइयों का निवारण हो सकता है।

कुछ सुझाव

ग्रामों में अधिकतर जनता अशिक्षित होती है उनके लिए सरल से सरल भाषा में पुस्तकें हों ताकि अशिक्षित व्यक्ति सरल भाषा को आसानी से समझ लें। यदि वहां बड़ी-बड़ी पुस्तकें गूढ़ भाषा में लिखी होंगी तो उसको समझना उसके लिए कठिन होगा।

किसान के सुविधानुसार पुस्तकालय के खुलने तथा बंद होने का समय हो ताकि वह पुस्तकालय का उपयोग कर सके।

पुस्तकालयों की पुस्तकों का ज्ञान कराने के लिए एक दिन गोष्ठी के लिए नियुक्त हो कथा कहानी, बातचीत द्वारा पुस्तकों के पढ़ने की रुचि पैदा की जाए। रोजमर्रा की खबर की जानकारी दी जाए।

पुस्तकालय में रेडियो, टी० वी० की सुविधा हो ताकि किसानों में ज्ञान की वृद्धि की जा सके फिल्मों द्वारा भी उन्हें रोजमर्रा की जानकरी दी जा सकती है।

नए-नए उपकरणों का इस्तेमाल सहकारी बैंकों की सुविधा, सहकारी स्टोर के नियम उपनियम आदि की सही जानकारी फिल्म द्वारा आसानी से दी जा सकती है।

पुस्तकालय में उस गांव का नक्शा भारत का नक्शा तथा कुछ महान पुरुषों जैसे महात्मा गांधी आदि के चित्र भी लगे हों ताकि ग्रामीणों में भारत के प्रति कर्त्तव्य में रुचि पैदा हो। वह अपना कर्त्तव्य निभाने में पीछे न रहें।

पुस्तकालय घरों के नजदीक हों, यदि कहीं ऐसी असुविधा हो तो चलते-फिरते पुस्तकालयों का प्रबन्ध किया जाए।

ग्रामीण प्राथमिक स्कूलों के माध्यम से भी ग्रामीण क्षेत्रों में पुस्तकालयों का विस्तार किया जा सकता है। □

हमारी वन सम्पदा और उसका आर्थिक महत्व

एस० के० धवन

वन किसी भी देश के लिए "हरा सोना" होते हैं। किसी देश की अर्थ व्यवस्था में वन सुरक्षात्मक एवं उत्पादक भूमिका निभाते हैं।

नदियों की तरह, भारतीय वनों का भी हमारे देश की अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण स्थान है। ईंधन प्राप्ति के लिए वन एक बहु-मूल्य स्रोत है। हमारे विभिन्न पशुओं के लिए हरी घास, सूखी घास एवं चारा भी वनों से ही प्राप्त होता है। मकान बनाने, फर्नीचर बनाने, रक्षा तथा संचार कार्यों के लिए तथा विभिन्न प्रकार के विशाल उद्योगों जिनमें लकड़ी मुख्य कच्चा माल होती है, भी वनों से ही उपलब्ध होती है। बांस, लाख, गोंद, राल (रैसिन) चर्मशोधन सामग्री (टैनिंग मैटीरियल), जड़ी-बूटी एवं कथ्था आदि भी वनों की देन है। यह वनों की उत्पादक भमिका है जो कि शायद अत्यधिक महत्वपूर्ण है। वन, भूमि को उपजाऊ बना कर भूमि की उर्वरकता को सुरक्षित रखते हैं, जिसके परिणामस्वरूप वनस्पति उपलब्ध होती है। वन जलवायु का एक मुख्य नियामक है। वन भूमि के नीचे बह रहे पानी को सोख लेता है, जिससे वायु में नमी आ जाती है, इस प्रकार वन पम्प के रूप में भी कार्य करते हैं।

इसके अतिरिक्त, वन पहाड़ों की ढलान पर पानी से होने वाले कटाव को भी रोकते हैं। अधिक वर्षा होने के कारण तेज गति से बहने वाले पानी की गति को कम कर वन मिट्टी की ऊपरी सतह की उर्वरकता को कम होने से रोकते हैं। इसके अतिरिक्त वर्षा के पानी को भारी मात्रा में वनों में व्याप्त पेड़-पौधों की गहरी जड़े सोख लेती हैं। सोखा हुआ पानी अबंमृदा (सब सॅाइल) के माध्यम से गुजरता है और नहरों तथा नदियों को भरा हुआ रखता है। इस प्रकार वन पहाड़ों की ढलानों को कटाव से रोकते हैं, बाढ़ के खतरे को कम करते हैं और वर्षा के अभाव में सूखा पड़ने की स्थिति में उचित मात्रा में पानी उपलब्ध कराते हैं। वनों द्वारा हमारी मिट्टी जल स्रोतों तथा जल-वायु को सुरक्षा प्रदान करती है, इसके अतिरिक्त पेड़-पौधे हमारे घर, शहर, नगर तथा गांवों को सजाते-संवारतें हैं, उनकी शोभा बढ़ाते हैं।

हमारे वनों में 5000 से भी अधिक विभिन्न जाति के और 10,000 से अधिक विभिन्न जड़ी-बूटियों वाले वृक्ष उपलब्ध हैं। वन हमारे खेतों की रक्षा करते हैं और हमारी कृषि-फसलों की अधिक पैदावार में सहायता करते हैं। वन हमारे विपुल तथा बेशकीमती जंगली पशुधन का गढ़ हैं, भारतीय वनों में पाए जाने वाले जीव-जन्तु केवल अधिक संख्या में ही उपलब्ध नहीं हैं, बल्कि रंगों की विविधता एवं आकर्षण भी हमारे वन्य पशु-धन का एक गुण है। हमारे वन्य जीवों में 500 से अधिक जाति के स्तनपायी, 250 जाति के रेंगने वाले जीव-जन्तु तथा लगभग 2100 जाति के कीड़े पाए जाते हैं। हमारे वनों के आन्तरिक तथा बाह्य—दोनों क्षेत्रों में संकट में पड़े जीव-जन्तुओं के संरक्षण तथा बचाव के लिए लागू वन्य जीव-जन्तु बचाव अधिनियम 1972 में निर्धारित अवधि को अधिकांश राज्यों तथा केन्द्र शासित क्षेत्रों में आगे बढ़ा दिया गया है।

यद्यपि भारत वन्य सम्पदा की दृष्टि से काफी धनाढ्य है किन्तु वार्षिक वृद्धि औसत की दृष्टि से हमारे वनों का स्थान विश्व के निम्नतम देशों में से है। हमारे वन अनियमित रूप से बंटे हुए हैं और हमारा वन्य उत्पादन भी अन्य देशों के अनुपात में कम है।

हमारा प्रति वर्ष प्रति हेक्टेयर उत्पादन 0.5 क्यूबिक मीटर है, जबकि विश्व का औसत 2.1 क्यूबिक मीटर प्रति हेक्टेयर है। हमारा वनों से प्राप्त राजस्व 204 करोड़ 30 लाख रुपये है। हमारे राष्ट्रीय राजस्व में वनों से प्राप्त वार्षिक राजस्व का कुल योगदान 2.7 प्रतिशत (अर्थात् 525 करोड़ रु० है) बहुसंख्यक छोटे तथा बड़े वन-उत्पाद के अतिरिक्त वन-चारा, रोज़गार, आदिवासियों के लिए आवास, अनेकों उद्योगों को कच्चा माल उपलब्ध कराते हैं। हमारे बहुत से वन-उत्पाद विदेशों को निर्यात किए जाते हैं। सन् 1974-75 में हमारे वनों ने 85 करोड़ 75 लाख रुपये का विदेशी मुद्रा प्राप्त की। हमारे वन 17 करोड़ मवेशियों, 5 करोड़ 80 लाख भैंसों तथा 12 करोड़ अन्य पशुधन को चारा प्रदान करते हैं। यह चारा वन में रहने वाले 50 करोड़ स्तनपायी जीव-जंतुओं को उपलब्ध चारे के अतिरिक्त है। वनों से श्रमिकों के 97 करोड़ श्रम-दिन के बराबर रोज़गार प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त विभिन्न राज्यों के लगभग 1 लाख 34 हजार व्यावसायिक, उप-व्यावसायिक तथा गैर-तकनीकी स्टाफ वन-विभाग में कार्यरत है। भारत में क्रियान्वित 183 वन परिमंडलों के अधीन 914 वन मंडल तथा लगभग 3000 खुले मैदान शामिल हैं। 3.8 करोड़ से अधिक आदिवासी भारतीय वनों में अपना जीवन-यापन करते हैं।

भारतीय वनों को मोटे तौर पर निम्नलिखित वर्गों में विभाजित किया जा सकता है: (1) उष्ण कटिबन्धीय वन, (2) पर्वतीय उप-उष्ण-कटिबन्धीय वन, (3) पर्वतीय शीतोष्ण वन और (4) पर्वतीय वन। इन प्रत्येक वर्ग के वनों के भी अनेक प्रकार हैं और हर प्रकार के वनों को छोटे-छोटे भागों में बांटा जा सकता है। भारत के उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में कन्या कुमारी तथा पूर्व में असम से लेकर पश्चिम में राजस्थान तक कुल 746 लाख हेक्टेयर क्षेत्र तथा कुल भूमि का 22.7 प्रतिशत (29.5 प्रतिशत विश्व औसत की तुलना में) भाग वनों ने घेर रक्खा है। हमारे अधिकांश वन पर्वतीय भू-भाग या ऐसे सुदूर आंतरिक क्षेत्रों में हैं जहां संचार व्यवस्था भली-भांति विकसित नहीं है—मध्य प्रदेश का अधिकतम क्षेत्र वनों से युक्त है और देश के कुल वनीय क्षेत्र का लगभग 23 प्रतिशत है। अन्य महत्वपूर्ण वन्य सम्पन्न राज्य हैं: आन्ध्र प्रदेश, असम, हिमाचल प्रदेश, कर्नाटक, महाराष्ट्र, उड़ीसा, राजस्थान, उत्तर प्रदेश और अंडमान और निकोबार द्वीप। विश्व के 1.08 हेक्टेयर औसत की तुलना में भारत में प्रति व्यक्ति वन क्षेत्र 0.13 हेक्टेयर है।

राष्ट्रीय वन नीति का लक्ष्य देश के कुल भू-क्षेत्र का एक तिहाई अंश जंगलों से ढक देने का है। वन भूमि आज भयंकर छीना-झपटी का शिकार हो गई है और उसका दूसरे-क्षेत्रों में उपयोग होने लग गया है, जैसे कि कृषि, नदी-घाटी परियोजनाएं, औद्योगिक इस्टेट इत्यादि। परिणाम यह हुआ है कि 1951–52 और 1972–73 के बीच लगभग 42 लाख हेक्टेयर जंगल साफ हो गए। यह भयावह स्थिति बहुत दिनों से सरकार के लिए चिंता का विषय बनी हुई है। केन्द्रीय वानिकी बोर्ड ने अनुशंसा की है कि वन-क्षेत्र का उपयोग वन से इतर किसी कार्य के लिए न किया जाए। और यदि परिस्थितिवश ऐसा उपयोग अनिवार्य हो ही जाए तो जितनी वनभूमि का वैसे कार्य के लिए उपयोग हो, यथासंभव उतनी ही भूमि वनरोपण के लिए उपलब्ध कर दी जाए। तदनुरूप राज्य सरकारें इस प्राकृतिक संपदा के संरक्षण के लिए कारगर उपाय कर रही हैं। यह स्मरणीय है कि देश के कुल वनक्षेत्र का लगभग 95.7 प्रतिशत अंश राज्यों के अधिकार में है।

हमारे वनों की रचना इस प्रकार है: कोनिफरस वन 42 लाख हेक्टेयर में, चौड़े पत्ते वाले साल और इमारती लकड़ी वाले वृक्ष 6 करोड़ 12 लाख हेक्टेयर में, विविध प्रकार के वृक्ष और बांस के जंगल 96 लाख हेक्टेयर में हैं। राज्यों के अधिकार में 95.2 प्रतिशत, सामूहिक निकायों के अधिकार में 3.1 प्रतिशत और निजी व्यक्तियों के अधिकार में 1.7 प्रतिशत जंगल हैं। यह उल्लेख अप्रासंगिक न होगा कि वन से संबद्ध क्रियान्वयन में औसतन 36 लाख लोग लगे हुए हैं।

मानवकृत वन विकास

वन संबंधी संसाधनों को बढ़ाने का जो राष्ट्रीय कार्यक्रम है उसमें मानवकृत वानिकी के वनरोपण कार्यक्रम का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। इस कार्यक्रम में जोर इस बात पर है कि विभिन्न राष्ट्रीय उपयोगों और काष्ठाधारित उद्योगों के लिए अपेक्षित कच्चे माल के रूप में जिन वृक्षों का आर्थिक और औद्योगिक महत्व है उनको अधिक लगाया जाए। राजकीय योजनाओं के अधीन विभिन्न वनरोपण कार्यक्रम चल रहे हैं और मार्च, 1979 तक लगभग 34 लाख हेक्टेयर जंगल तैयार कर लिए गए हैं।

वन विकास निगम

कहने की आवश्यकता नहीं कि देश में वन विकास के लिए पर्याप्त धनराशि अपेक्षित है जिसके लिए सहज व्यवस्था कठिन है। इन सब बातों पर विचार करते हुए राष्ट्रीय कृषि आयोग की अनुशंसा के अनुसार इसके लिए संस्थागत वित्त को आकृष्ट करना आवश्यक हो गया है। फलतः आज विभिन्न राज्यों और संघशासित क्षेत्रों में उत्पादन वानिकी और वनोद्योगों को बढ़ावा देने के लिए सोलह स्वशासी वन विकास निगम स्थापित हैं।

वन संसाधन सर्वेक्षण

वन संसाधनों के पूंजी निवेश पूर्व सर्वेक्षण की एक केन्द्रीय योजना है। इस योजना का उद्देश्य इस बात का पता लगाना है कि देश के कुछ चुने हुए भागों में काष्ठाधारित उद्योगों की स्थापना और विकास के लिए कच्चे माल की शिकायत से उपलब्धता की क्या स्थिति है। 1979-80 में लगभग 57,229 वर्ग मीटर क्षेत्र का सर्वेक्षण कर लेने का लक्ष्य था। सर्वेक्षण संगठन के शुरू होने के बाद से लगभग 23,428 वर्ग मीटर का सर्वेक्षण और सम्भावित विकास के लिए मूल्यांकन हो चुका है।

शिक्षा, शोध और प्रशिक्षण

वानिकी और वनोत्पादों के विषय में अनुसंधान करने तथा वानिकी शिक्षा प्रदान करने के लिए देहरादून स्थित वन अनुसंधान संस्थान मुख्य केन्द्र है। इस संस्थान के बंगलौर, कोयम्बतूर, जबलपुर और बर्नीहाट में चार क्षेत्रीय केन्द्र हैं। ये केन्द्र क्षेत्रीय अनुसंधान कार्य करने के लिए हैं। वन अनुसंधान संस्थान के तत्वाधान में विकास अनुसंधान योजना पर कुल 11 करोड़ 10 लाख रुपये की लागत का काम हो रहा है।

वन संसाधनों के प्रबंध के आधुनिक व्यवसाय पक्ष के संबंध में भारतीय वानिकी कार्मिकों को प्रशिक्षित करने के लिए स्वीडिश अन्तर्राष्ट्रीय विकास एजेंसी की सहायता से अहमदाबाद में भारतीय वन प्रबंध संस्थान स्थापित किया गया है ।

मूल्यांकन

वानिकी प्रभाग (कृषि विकास) में अपर वन महानिरीक्षक के अधीन एक आयोजना-परियोजना निरूपण संसाधन तथ्यांकन और मूल्यांकन कोष्ठ स्थापित किया गया है । इस कोष्ठ के मुख्य उद्देश्य इस प्रकार हैं :— (1) सामाजिक वानिकी कार्यक्रमों का मार्गदर्शन और स्थानीय लोगों का सहयोग प्राप्त करने के लिए उपयुक्त पद्धति का विकास करना (2) राज्य वन विकास निगमों के क्रियाकलापों का समन्वय करना (3) राज्य वन विकास निगमों की परियोजनाओं का तथ्यांकन और मूल्यांकन करना और (4) बाह्य सहायता के लिए परियोजनाएं तैयार करना और सौदा करना । विभिन्न द्विपक्षीय और बहुपक्षीय सहायता-प्रदत्त कार्यक्रमों के अधीन, 1979-80 में, स्थानीय पूंजी के सहित कुल 17 करोड़ 24 लाख रुपये की पूंजी वाली 11 परियोजनाएं निरूपित की गई थीं । उत्तर प्रदेश और गुजरात में विश्व बैंक के सहयोग से कुल 12 करोड़ 5 लाख रुपये की पूंजी की दो सामाजिक वानिकी परियोजनाओं की व्यवस्था की गई है ।

यह उल्लेखनीय है कि हाल के अनुसंधानों से यह पता चला है कि ठोस पारिस्थितिक संतुलन के लिए कुल भूक्षेत्र का एक तिहाई भाग जंगलों से आच्छादित रहना चाहिए । इस तथ्य को देखते हुए राष्ट्रीय वन नीति (1952) में कहा गया कि देश के कुल क्षेत्र का कम से कम 33.3 प्रतिशत भाग जंगलों से ढका रहना चाहिए । पर्वतीय क्षेत्रों में यह प्रतिशतता 60 और मैदानी क्षेत्रों में 20 प्रतिशत होनी चाहिए । तात्पर्य यह है कि मात्र वर्तमान वनों को ही बचाए रखने की नहीं, बल्कि अधिकाधिक गैर-कृषि भूमि में जंगल लगाने की भी आवश्यकता है । वन क्षेत्र को बढ़ाने के लिए मानवकृत जंगल ही उत्तम साधन हैं । किन्तु 1973-74 तक देश के कुल वन क्षेत्र का केवल 20 प्रतिशत अंश ही मानवकृत था । यह अवश्य ही बड़े संतोष की बात है कि केन्द्र और राज्य दोनों स्तरों पर सरकारों ने वृक्षों के महत्व को अनुभव किया है और बड़े ही व्यापक पैमाने पर वृक्षारोपण अभियान शुरू किए गए हैं । नए वृक्ष तो लगाए ही जाएं, किन्तु जो वृक्ष खड़े हैं उनकी भी रक्षा का उतना ही महत्व है और इसकी ओर समुचित ध्यान देने की आवश्यकता है । भारत में जंगलों की बड़ी क्षति हुई है । वनों को संविधान की समवर्ती सूची में लाने के लिए केन्द्रीय सरकार का जो हाल ही में प्रयास चल रहा है वह भारत में वनों के बढ़ते हुए महत्व का ही सूचक है ।

राष्ट्र को समृद्ध बनाने के लिए भूमि को समृद्ध बनाइये

...यही हमारा सिद्धान्त है
और यही हमारा उद्देश्य ।

क्योंकि देश की बढ़ती हुई जरूरतों को पूरा करने के लिए, कृषि उत्पादन में वृद्धि जरूरी है ।

हमने 1951 में ही इसे महसूस कर लिया था और इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए हम जी जान से जुट गए :

- अधिक से अधिक उर्वरकों के उत्पादन में
- कृषि शास्त्र का भरपूर ज्ञान और कृषि सलाहकार सेवायें देने में
- उर्वरकों के प्रदर्शनों, खेती के व्यावहारिक कार्यों, किसान मेलों, खेती के प्रशिक्षण, मिट्टी की जांच तथा अन्य तकनीकी सलाह के जरिए किसानों को शिक्षित करने में ।

आज हम देश की सबसे पुरानी उर्वरक कम्पनी हैं और हमारी शानदार उपलब्धियां हैं ।

लेकिन एफ सी आई में कार्यरत हम 14000 लोगों का प्रयास अभी जारी है ।

उत्पादन बढ़ाने के लिए हमारे कारखानों में दिन रात काम चलता रहता है ।

तलचर और रामगुंडम में हमारी दो नई इकाइयां तेजी से स्थापित हो रही हैं ।

और हर रोज हमारे कृषि विशेषज्ञ देश के दूरदराज स्थित हिस्सों में जाते हैं ताकि भरपूर फसल पैदा करने में वे भारत के किसानों का मार्गदर्शन कर सकें और उन्हें मदद पहुंचा सकें ।

किसी राष्ट्र को समृद्ध बनाने के लिए कम मेहनत से काम नहीं चल सकता ।

दि फ़र्टीलाइज़र कार्पोरेशन
आफ इंडिया लि०
'मधुवन' 55 नेहरू प्लेस, नई दिल्ली-110019

पहला सुख निरोगी काया

हल्दी एक गुणकारी घरेलू औषधि

वैद्य रघुनन्दन प्रसाद साहू

हल्दी घर में रहती है तथा विविध आहार द्रव्यों के निर्माण में इसका प्रयोग हम लोग करते हैं। चूंकि ग्राम जनता इसे सिर्फ आहार द्रव्य के रूप में ही जानती है। पर इसके बहुत सारे औषधीय गुण हैं, जिसकी जानकारी यदि लोगों को हो तो बहुत सारे रोगों की चिकित्सा इसके द्वारा अकेले या इसमें कुछ अन्य द्रव्य को मिलाकर आसानी से की जा सकती है। तो इसके निम्नलिखित औषधीय गुण जानिए और आवश्यकता पड़ने पर निर्भय होकर इसका उपयोग कर लाभ उठाइए।

1. **वर्णदायक** :—हल्दी को संस्कृत में हरिद्रा कहते हैं। संस्कृत की यह विशेषता है कि वह किसी शब्द की रचना उसके गुण-धर्म के आधार पर ही करती है जिसे उसकी व्युत्पत्ति कहते हैं। हरिद्रा शब्द का व्युत्पत्ति मूलक अर्थ है जो शरीर के वर्ण को ठीक करे। इसके लिए इसका उबटन के रूप में प्रयोग होता है। उबटन के लिए हल्दी में गेहूं का भुना आटा, चन्दन का चूर्ण और सरसों का तेल मिलाकर उसको त्वचा पर मलने से शरीर की त्वचा निखर आती है तथा त्वचा साफ, सुन्दर और कांतियुक्त हो जाती है। बंगाल प्रदेश की स्त्रियां अभी भी इस प्रकार का उबटन नित्य प्रति प्रयोग में लाती हैं। उत्तरपूर्वी भारत में शादी से तीन-चार दिन पहले अभी भी वर-वधू की त्वचा को निखारने के लिए अच्छी हल्दी के उबटन करने का रिवाज है।

2. **आघातज शोथ एवं वेदना पर** :—आजकल बीसवीं शताब्दी में प्राणी एक जगह से दूसरी जगह जाने के लिए विभिन्न प्रकार के तेज वाहनों का प्रयोग करते हैं। इन तेज रफ्तार वाले वाहनों का प्रयोग करते समय उनसे गिरकर या टकरा कर आघात शोथ एवं वेदना का शिकार होना आम बात है। इस शोथ एवं वेदना वाले स्थान पर हल्दी को अकेले पीस कर गरम करके लेप करने से वहां की सूजन एवं वेदना दूर हो जाती है। यदि चाहें तो हल्दी के इस लेप में थोड़ा साबुन को भी मिला लें। इससे तुरन्त राहत मिलती है।

3. **खाज-खुजली में हल्दी का दशांग लेप** :—गन्दगी के कारण तथा अन्य बीमारियों के कारण जब त्वचा पर खुजली होती हो या उसमें लाल-लाल छोटी-छोटी फुंसियां हो गई हों तो ऐसे समय में-हल्दी का चूर्ण नारियल के तेल में मिलाकर और उसमें थोड़ा कपूर डालकर त्वचा पर लगाने से शरीर की खुजली और फुंसियों से छुटकारा मिल जाता है। हल्दी का ही एक सुपरिचित योग है—"दशांगलेप"। इसमें हल्दी के साथ दारु हल्दी, शिरीष, तगर, मुलहठी, चन्दन, बड़ी इलायची, जटामांसी, कूठ और खस इन दस औषधियों को बराबर भाग में लेकर चूर्ण बना लेते हैं। यह चूर्ण दशांगलेप के नाम से आयुर्वेद में वर्णित है। इसमें नारियल का तेल और कपूर मिला कर लगाने से सभी तरह की खाज, खुजली और फोड़े-फुंसियां ठीक हो जाती हैं।

4 **व्रण शोथ में लेप** : फोड़ा, फुंसी तथा घाव को शीघ्र ही पकाकर रोग दूर करने के लिए हल्दी की पुल्टिस बनाकर सेंक देने से व्रणशोथ शीघ्र ही पक कर ठीक हो जाता है। घाव से पूय आसानी से निकल जाए और साफ होकर वह घाव जल्दी ही भर जाए इसके लिए भी हल्दी का चूर्ण अति उत्तम है। हल्दी के चूर्ण को घाव पर अकेले डालकर या उसमें थोड़ा वेसलीन मिलाकर मलहम बनाकर प्रयोग करना चाहिए।

5. **यकृत् प्लीहा पर लेप** : विभिन्न रोगों के कारण जब यकृत और प्लीहा बढ़ जाए तो उस यकृत प्लीहा वृद्धि वाले स्थान पर हल्दी के चूर्ण को गोमूत्र में डालकर गरम-गरम लेप करने से यकृत और प्लीहा की वृद्धि रुक जाती है और तथा उदरशूल दूर हो जाता है।

6. **अर्स में लेप** : बवासीर के मस्से पर हल्दी का चूर्ण देसी घी में मिलाकर लेप करने से बवासीर के मस्से की सूजन दूर होकर रोगी का कष्ट कम हो जाता है।

7. **मूर्च्छा हिचकी एवं श्वास** : जब कोई आदमी बेहोश हो गया हो या किसी का दम फूल रहा हो या हिचकी आ रही हो तो वसी अवस्था में हल्दी के छोटे-छोटे टुकड़े या चूर्ण को आग पर रख दें। इससे निकलने वाले धूएं को सूंघने से मूर्छा, हिचकी एवं दम फूलना धीरे-धीरे ठीक हो जाता है।

8. **आंख आना** : आंख आने की बीमारी अक्सर महामारी के रूप में फैलती रहती है जैसा कि अभी कुछ महीने पूर्व भी हुआ था या ऐसे भी जब किसी की आंख आ जाए तो एक भाग हल्दी के चूर्ण को 10 गुणे पानी में डालकर पका लें फिर इसे अच्छी तरह फिल्टर से छान कर 2–4 बूंद की मात्रा में दिन में तीन चार बार डालने से नेत्राभिष्यंद अर्थात आंखों का आना ठीक हो जाता है। यदि इसमें जल, के स्थानपर गुलाब जल का प्रयोग करें तो वह और भी शीघ्र गुणकारी होता है।

9. **शीतपित्त में हरिद्राखंड** : शीतपित्त में, जिसे आम बोल चाल की भाषा में पित्ती उछलना कहते हैं, हल्दी विशेष गुणकारी है। आधुनिक चिकित्सा में इसे एलर्जी कह कर भी चिकित्सा की जाती है। वैसी अवस्था में हल्दी का एक योग जिसे हरिद्राखंड कहते हैं अतिउत्तम औषधि है। इसकी आधा से दो चम्मच की मात्रा दो तीन बार दिन में लेने से शीतपित्त से मुक्ति मिल जाती है।

10. **प्रमेह** : प्रमेह अर्थात मूत्र के रोगों में हल्दी का चूर्ण या स्वरस भी अतिउत्तम औषधि है। प्रमेह के 20 प्रकार आयुर्वेद में वर्णित हैं। उन सभी में यहां तक कि मधुमेह में भी हल्दा का प्रयोग अति गुणकारी है। यदि कच्ची हल्दी मिल जाए तो सुबह

(शेष पृष्ठ 30 पर)

साहित्य समीक्षा

ओइम् नमः शिवाय : सम्पादक : वियोगी हरि, प्रकाशक : मण्डेलिया परमार्थ कोष, जियाजीराव काटन मिल्स, ग्वालियर, म० प्र०, पृष्ठ सं० : 120, मूल्य : 5 रुपये ।

प्रस्तुत पुस्तक शिव स्तुति का व्यापक संकलन है, जिसमें शिव की महानता और उनके व्यापक प्रभाव को अंकित किया गया है ।

शिव स्तुति का प्रभाव भारत तक ही नहीं रोम, यूनान, मिश्र, चीन और अमेरिका तक में लिंग-पूजा के रूप में देखने में आया है। शिव सगुण रूप में नटराज हैं, अर्द्ध-नारीश्वर और विश्वनाथ हैं। वह मनमौजी हैं और औघड़दानी हैं।

इस पुस्तक में महाभारत के अनुशासन पर्व, शिव पुराण, वृहत-स्तोत्र रत्नाकर से स्तुतियां ली गई हैं, विनय पत्रिका में से भी ली गई हैं।

इस आलोच्य पुस्तक में श्री कृष्ण, संध्या, उपमन्यु, तुण्डि, हिमालय, दक्ष, शंकराचार्य आदि देवताओं द्वारा स्तुतियां संकलित हैं।

इसमें सबसे विशेष बात है हर स्तुति की पुराण सम्मत कथा देना। स्तुतियों का सरल अर्थ भक्ति भाव के पाठकों को भाव विभोर बनाने में सफल है ।

बहुरंगी पुस्तक का गेट अप किसी विदेशी पुस्तक से कम नहीं है। संपादक ने शिव स्तुतियों का संकलन एक स्थान पर प्रस्तुत करके शिव के विराट स्वरूप व उनकी महिमा को हमारे सामने लाने का प्रशंसनीय कार्य किया है। ☐

—कु० राज बाला,
64/5, शिव मन्दिर मार्ग,
मौजपुर, दिल्ली-110053

महाभारत सार लेखक : सूरजमल मोहता, प्रकाशक : सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या : 506, मूल्य : दस रुपये ।

देवव्रत (भीष्म) राजा शान्तनु के पुत्र थे । एक बार शान्तनु किसी निषाद की कन्या पर मुग्ध हो गए । निषाद राज ने कहा कि वह इस शर्त पर अपनी लड़की की शादी करेगा कि केवल उसका पुत्र ही राजा बनेगा । भीष्म ने पिता की शादी निषाद कन्या सत्यवती से करा दी । सत्यवती से पुत्र उत्पन्न हुए । युद्ध में एक पुत्र मारा गया । इससे पुत्र विचित्रवीर्य का विवाह अम्बा और अम्बालिका से हुआ । विचित्रवीर्य की मृत्य के बाद भीष्म ने व्यास का आव्हान किया जिनकी कृपा से अम्बा से धृतराष्ट्र व अम्बालिका से पाण्डु ने जन्म लिया । धृतराष्ट्र का गांधारी व पाण्डु का पृथा (कुंती) व माद्री से विवाह हुआ । गांधारी के सौ पुत्र व कुंती से तीन व माद्री से दो पुत्र नकुल और सहदेव उत्पन्न हुए । यही पांच पाण्डव कहलाए । धृतराष्ट्र के 100 पुत्र कौरव कहलाए ।

लेखक ने महाभारत के मूल स्वरूप को सुरक्षित रखते हुए सरल व सुबोधशैली में महाभारत का सार प्रस्तुत करके हिन्दी में एक स्तुत्य कार्य किया है । महाभारत के विषय में आम पाठक की जिज्ञासा को रोचक घटनाओं में पिरोकर प्रस्तुत करना सिद्ध करता है कि लेखक ने महाभारत और सम्बंधित पुराणों का गम्भीर अध्ययन किया है और उन्हीं घटनाओं को इस बार सार-संक्षेप में प्रस्तुत किया है जो उदात्त चरित्र व आदर्श हों । जैसे श्रीमद्भगवतगीता और महाभारत में राजा परीक्षित के चरित्र में बड़ा आभूषण है । भागवत में वह तेजस्वी व उदात्त गुणों से भरपूर है लेकिन महाभारत में कायर और भयभीत रहते हैं । इसी प्रकार वृत्तासुर, महाराजा पृथु, रन्तिदेव और दुष्यंत-शकुन्तला आदि की परम्परागत घटनाओं में से आदर्श स्वरूप को चुना है ।

महाभारत सार में आदि पर्व, युद्ध पर्व और शान्ति पर्व की कथाओं का चयन इस ढंग से किया गया है कि वे मानवीय संस्कृति और आदर्श जीवन का जीवन्त उदाहरण बन जाती हैं।

पुस्तक का गेट अप पक्ष सशक्त है । ☐

—जगदीश कश्यप,
डी-32, गली सिटी डाकघर,
गाजियाबाद-201001 (उ० प्र०)

जनरल आफ दि इंस्टिट्यूशन ऑफ इंजीनियर्स (इंडिया), हिन्दी विभाग, पर्यावरण विशेषांक, मुख्य सम्पादक : भगवान टेकचन्द नागरानी, पृष्ठ संख्या : 126, मूल्य : 4 रुपये ।

सभ्यता के विकास क्रम में भौतिक साधनों की उपलब्धि जहां जीवन की सुख-सुविधाओं को बढ़ाती है वहां स्वास्थ्य पर चोरी-चोरी प्रहार कर अकाल मृत्यु को आमन्त्रित करती है। तीव्र औद्योगिक विकास, नदियों में मल-जल का प्रवाह तथा वनों का विनाश आदि कारण पर्यावरण-प्रदूषण के लिए जिम्मेदार हैं । जल-थल वायु जैसे जीवन तत्वों का प्राकृतिक स्वरूप नष्ट होता जा रहा है । प्रकृति से दूर भागने के जहरीले परिणाम मनुष्य जाति भोग रही है और भोगती रहेगी ।

"धर्म, संस्कृति और प्रदूषण में स्वामी डा० सास्वती ने धार्मिक अन्ध-विश्वास के कारण नदियों और जलाशयों में भारी संख्या में स्नान करने मुर्दों को प्रवाहित करने या अस्थि विसर्जन करने को जल तथा वायु के साथ अनाचार बताया है। एक स्थल पर डा० रिजर्ड के मत को पर्यावरण में वनों के महत्व की दृष्टि से उद्धृत किया गया है—'वनों की प्रथम उपज प्राण वायु है, दूसरे पानी और तीसरे खाद्य। चौथा कार्य भू-क्षरण को रोकना, पांचवा वन्य जन्तुओं की रक्षा और छठा प्रकृति का मौसमी सन्तुलन बनाए रखना है।" इससे वनों की रक्षा और वृक्षारोपण की प्रेरणा मिलती है।

पूर्व-पीठिका में पर्यावरण अनुकूलन पर सामग्री दी गई है। शेष सम्पूर्ण जनरल को चार खण्डों में विभक्त किया गया है। पहले में पर्यावरण-विज्ञान पर भारतीय मनीषियों का विचार चिंतन, दूसरे में वर्तमान अनुभव, अनुसंधान और सिद्धांत, तीसरे में प्रदूषण से प्रकृति का संरक्षण तथा चौथे में कुछ उपचार विभिन्न निबन्धों के माध्यम से प्रस्तुत किए गए हैं। समाहार में जनरल के आनरेरी तकनीकी संपादक श्री गुप्तबन्धु ने पर्यावरण सुधारने के लिए भारतीय शिक्षा का संकेत देकर एक मार्ग सुझाया है।

वर्तमान औद्योगिक युग की इस भयंकर समस्या के लिए वैज्ञानिक शिक्षाविद्, राजनेता सभी चिन्तित हैं। इस विशेषांक के माध्यम से विभिन्न पक्षों को लेकर विद्वानों के विचारों को प्रस्तुत किया गया है। जनरल में पर्यावरण-प्रदूषण के कारणों के बाद उसके निवारण के सम्बन्ध में जो उपाय दिए गए हैं निश्चित ही व्यवहार की कसौटी पर खरे उतरेंगे। □

राकेश कुमार अग्रवाल
व्याख्याता, वाणिज्य विभाग
एच० एस० बी० (पी० जी०) कालिज,
हापुड़ (मेरठ विश्वविद्यालय) उ०प्र०

हालात (लघुकथा संग्रह) : सम्पादक : कमल चोपड़ा, प्रकाशक : पंकज प्रकाशन, सी-8/158-ए, लारेंस रोड, दिल्ली-35, पृष्ठ सं० - 168, मूल्य : 25 रुपये।

हिन्दी लघुकथा 1912 से लेकर आज तक लगातार लिखी जा रही है। छठा और सातवां दशक हिन्दी लघुकथा के लिए भले ही कमजोर रहे हों परन्तु इन दशकों में लघुकथा संग्रह जैसे श्याम नन्दन शास्त्री का पाषाण और पंछी भी सामने आया। जयशंकर का लघुकथा संग्रह प्रतिध्वनि, सुदर्शन का झरोखे, आनन्द मोहन अवस्थी का "बन्धनों की रक्षा" तथा कन्हैया लाल मिश्र प्रभाकर का "आकाश के तारे धरती के फूल" लघुकथा के लिए थाती है।

आठवें दशक में हिन्दी लघुकथा ने ऐसा रंग दिखाया कि नई पीढ़ी इसके पुनर्स्थापन में ही जुट गई। आज हिन्दी लघुकथा पर जितने शोध और संकलन निकल रहे हैं, वह आश्चर्य और हर्ष का विषय है।

इसी कड़ी में "हालात" लघुकथा संग्रह भी आता है जो "छोटी बड़ी बातें" लघुकथा संग्रह के बाद सशक्त संकलन है। वस्तुतः यह संकलन उन पहले ग्रुप के लघुकथाकारों को एक मंच पर लाने में सफल हुआ है, जो अत्यन्त दुरूह कार्य है। इसके साथ ही इस संकलन में मातादीन खरवार, स्वयं कमल चोपड़ा जैसे भी नये किन्तु समर्पित लघुकथाकार हैं।

इस संग्रह में 20 लघुकथाकारों की 5–5 लघुकथाएं हैं। इन लघुकथाओं में सामाजिक विसंगतियां, व्यवस्था के प्रति आक्रोश मनो-विकृति व दोहरे मापदण्ड जीने की विवशता, शोषण, राज-नैतिक पतन का प्रतिबिम्ब झलकता है। "कैरियर" लघुकथा में शिक्षा क्षेत्र में फैले भ्रष्टाचार को उजागर किया गया है, जो शोध छात्राओं को सहना पड़ता है।

"खोया हुआ आदमी" लघुकथा शिल्प की दृष्टि से महत्वपूर्ण है जिसमें आदमी के स्व की घुटन और उस पर चढ़े मुलम्मे को उतारा गया है। "हादसे" के बीच लघुकथा आज निम्न मध्य जिन्दगी की विवशता का अच्छा चित्रण है।

इस संकलन का दूसरा भाग विचार पक्ष है। जिसमें प्रेम जन-मंजय और नरेन्द्र कोहली की टिप्पणियां हैं। नरेन्द्र कोहली की यह उक्ति सही है कि "बाढ़ के पानी के साथ कुछ अवांछित भी आता है, पर क्रमशः पानी के कम होने के साथ आई उपजाऊ मिटटी अपना स्वरूप प्रकट करती है।"

श्री कोहली का इशारा उन अधकचरे लोगों की तरफ है, जो लघुकथा की मानसिकता को समझे बिना गद्यांश, रिपोर्टिंग, या चुटकुला नुमा रचनाएं लिख रहे हैं। विचार पक्ष में स्वयं संपादक कमल चोपड़ा का लेख हिन्दी लघुकथा की दशा-दिशा-संभावना पर गूढ़ संकेत करता है जो शास्त्रीय दृष्टिकोण की अपेक्षा व्यावहारिक है।

संकलन का गेटअप पक्ष सशक्त है पर प्रूफ की गल्तियां दाल में कंकर जैसा मजा खराब करती है। □

विजय कुमार

पहला सुख निरोगी काया . . . . [पृष्ठ 28 का शेष]

शाम कच्ची हल्दी का स्वरस आधा से दो तोले पीने से 90 दिन अर्थात तीन महीने में प्रमेह से मुक्ति मिल जाती है। यदि कच्ची हल्दी न मिले तो सूखी हल्दी का चूर्ण ही एक से दो चम्मच की मात्रा में सुबह शाम स्वच्छ जल से लेने पर लाभ होता है।

11. **श्वास कास** : शुष्क कास में जिसमें बलगम नहीं निकल रहा हो और जिसके कारण रोगी का दम फूलने लगे तो ऐसी अवस्था में हल्दी का चूर्ण एक चम्मच और मिश्री का चूर्ण एक चम्मच खाकर ऊपर से गरम दूध पीने से बलगम ढीला होकर निकल जाता है जिससे श्वास कास ठीक हो जाता है।

12. **अरुचि एवं कृमि** : हल्दी का चूर्ण एक चम्मच, वाय-विडंग का चूर्ण एक चम्मच दोनों मिलाकर सुबह, शाम गरम पानी से खाने से कृमि मर जाते हैं तथा अरुचि दूर हो जाती है। □

केन्द्र के समाचार

समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम

वर्तमान वित्तीय वर्ष के दौरान समन्वित ग्रामीण विकास के लिए जिसमें लघु सिंचाई कार्यक्रम भी शामिल हैं, केन्द्र के हिस्से के रूप में विभिन्न राज्यों और केन्द्र-शासित प्रदेशों को 4575.74 लाख रुपये दिए गए हैं। इसमें 414.88 लाख रुपये अगस्त, 1981 के दौरान दिए जा चुके थे।

इस कार्यक्रम के अन्तर्गत वर्ष 1980-81 के दौरान 12740.75 लाख रुपये व्यय किए गए। इसमें छोटे किसानों की विकास एजेंसी भी सम्मिलित है। अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों पर 2140.10 लाख रुपये खर्च किए गए जो कि कुल व्यय का 18.85 प्रतिशत है। व्यापारिक बैंकों और सहकारिताओं द्वारा 252.03 करोड़ रुपये का ऋण दिया गया। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत दी जाने वाली वार्षिक आर्थिक सहायता और वित्तीय संस्थानों द्वारा दिए गए ऋण से 27,75,613 परिवारों को सहायता मिली है। इनमें से 6,81,475 परिवार अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति से संबंधित हैं।

रबी के लिए अधिक उर्वरक

केन्द्र ने वर्ष 1981-82 में रबी मौसम के दौरान 41.61 लाख टन तक उर्वरक की खपत को सुनिश्चित करने के लिए अनेक कदम उठाए हैं। यह पिछले रबी के मौसम में हुई 33.78 लाख टन की वास्तविक खपत से लगभग 25 प्रतिशत अधिक है। चालू वर्ष में उर्वरकों की उपलब्धता पिछले वर्ष की तुलना में कहीं अधिक है। देशी उत्पादन में लगभग 50 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। अप्रैल-अगस्त 1980 के दौरान 10.41 लाख टन उर्वरकों के उत्पादन की तुलना में इस वर्ष की इसी अवधि के दौरान 15.59 लाख टन उर्वरकों का उत्पादन हुआ।

वर्ष 1981-82 के कृषि उत्पादन के लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए चालू वर्ष में कम से कम 65.22 लाख टन उर्वरक की आवश्यकता का अनुमान लगाया गया है। सूखा और बाढ़ के बावजूद 1981 के खरीफ मौसम के दौरान 1980 के खरीफ मौसम में हुई 21.38 लाख टन की वास्तविक खपत की तुलना में 23.6 लाख टन की वास्तविक खपत हुई। इस प्रकार से खपत में 10.43 प्रतिशत की वृद्धि हुई।

पशुधन की महत्वपूर्ण भूमिका

कृषि और ग्रामीण पुनर्निर्माण में राज्य मन्त्री श्री आर० बी० स्वामीनाथन ने कहा है कि गरीबी हटाने के लिए आर्थिक कार्यक्रम के क्रियान्वयन में और ग्रामीण इलाकों में कमजोर वर्ग के लोगों को उत्पादक रोजगार के अधिक अवसर प्रदान करने तथा सामाजिक न्याय के साथ विकास को बढ़ावा देने में एक पूर्ण एकीकृत पशुधन उत्पादन कार्यक्रम को महत्वपूर्ण भूमिका निभानी है। श्रीनगर में उत्तर क्षेत्रीय पशुधन तथा कुक्कुट प्रदर्शनी के पुरस्कार वितरण समारोह में उन्होंने कहा कि भारत जैसे कृषि प्रधान देश में न केवल ग्रामीण बल्कि राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था में भी मवेशियों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। भारत में दुधारु और भारवाही पशुओं की सबसे अधिक किस्में पाई जाती हैं। हालांकि हमारे देश में पशुओं की संख्या सर्वाधिक है लेकिन प्रति व्यक्ति दूध की उपलब्धता विश्व में सबसे कम है। इसका कारण हमारे मवेशियों की निम्न उत्पादकता है जो भविष्य में उनके प्रति बढ़िया प्रजनन और मवेशियों की अच्छी देख-भाल के जरिए उनकी दुग्ध उत्पादन की क्षमता काफी बढ़ाई जा सकती है।

संकर प्रजनन द्वारा दुग्ध उत्पादन में वृद्धि की चर्चा करते हुए उन्होंने कहा कि इस सम्बन्ध में राष्ट्रीय संस्थानों और कृषि विश्व-विद्यालयों द्वारा किए गए अनुसन्धानों से यह बात और स्पष्ट रूप से सामने आई है कि संकर प्रजनन के लाभों को अधिकाधिक ग्रामीण क्षेत्रों में पहुंचाया जाना चाहिए। विभिन्न राज्यों म स्थापित कृषि विश्व-विद्यालय उपयुक्त गांवों को अपनाकर और वहां पशुपालन के समुन्नत तरीकों के बारे में जानकारी देकर इस दिशा में काफी योग-दान कर सकते हैं।

भूमिहीनों को भूमि का वितरण

छठी पंचवर्षीय योजना (1980-85) के अनुसार देश में लगभग 15.74 लाख हेक्टेयर (39.35 लाख एकड़) घोषित फालतू भूमि में से केवल 6.79 लाख हेक्टेयर (16.98 लाख एकड़) अधिकतम सीमा से फालतू भूमि का वितरण भूमिहीन श्रमिकों के बीच हुआ है। लोकसभा में एक प्रश्न के उत्तर देते हुए कृषि और ग्रामीण पुनर्निर्माण मन्त्रालय में राज्य मन्त्री, श्री बालेश्वर राम ने कहा कि छठी पंचवर्षीय योजना 1980-85 में भूमि स्वामियों द्वारा राजस्व प्राधिकारियों के आदेशों के विरुद्ध दायर किए गए पुनरावेदनों तथा संशोधनों के धीमे निपटान का उल्लेख किया गया है और सुझाव दिया गया है कि अधिकतम सीमा से फालतू भूमि का कब्जा दिलाने तथा उसके वितरण का कार्य 2 वर्षों की अवधि म पूरा होना चाहिए।

राष्ट्रीय परिवार कल्याण पखवाड़ा

प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गांधी ने सारे देश में 11 से 25 अक्तूबर, 1981 तक मनाए जा रहे राष्ट्रीय परिवार कल्याण पख-वाड़े के अवसर पर निम्नलिखित संदेश दिया है :—

"हाल ही में हुई जनगणना ने परिवार नियोजन के महत्व तथा इसे सरकारी कार्यक्रम की सीमाओं से बाहर और अधिक प्रभावी जन-आन्दोलन बनाने की तात्कालिक आवश्यकता को उजागर किया

है। यदि जनसंख्या वृद्धि की वर्तमान दर को शीघ्रता से कम न किया गया तो विकास की तेज गति में सहायक हमारे संसाधनों पर बहुत अधिक दबाव पड़ेगा।

परिवार नियोजन का उद्देश्य बच्चों को अधिक तन्दरुस्त और प्रसन्नचित्त बनाना है। यह स्वभाविक ही है कि इससे माता-पिता को और अन्ततः सारे देश को बहुत बड़ा लाभ होगा। बच्चे अपने सुनहरे भविष्य के प्रति आशावान हो सकेंगे। महिलाओं को भी अपने व्यक्तित्व का विकास करने का अवसर मिलेगा तथा वे सुगृहणियों के रूप में अपने परिवारों की अच्छी देख-भाल कर सकेंगी।

मुझे आशा है कि लोग अब उस झूठे प्रचार से भ्रमित नहीं होंगे जो पहले ही काफी हानि पहुंचा चुका है। इस वर्ष का राष्ट्रीय परिवार कल्याण पखवाड़ा छोटे परिवार के आदर्श को अपनाने के लिए जन-साधारण में नई प्रेरणा का संचार करेगा।"

वन्य प्राणी संरक्षण

केन्द्रीय कृषि मन्त्री राव बीरेन्द्र सिंह ने कहा कि सरकार राष्ट्रीय उद्यानों और वन्य प्राणियों के आरक्षित स्थलों का व्यापक जाल बिछाना चाहती है जिससे कि देश में उपलब्ध सभी प्रकार के जीव-जन्तुओं की रक्षा की जा सके। वन्य प्राणी सप्ताह के अवसर पर उन्होंने अपने सन्देश में सरकार की नीतियों को स्पष्ट किया है जो इस प्रकार है :—

वन्य प्राणी आरक्षित-स्थलों में, समाप्त हो रहे वन्य-प्राणियों, विशेषकर मुख्य नस्लों के जीव-जन्तुओं के रहने के स्थानों का सुधार करना;

ऐसी प्रजातियों को, जिनके समाप्त होने का खतरा है, उनके मूल स्थान पर पुनः बसाना;

ऐसी जातियों के संरक्षण और प्रजनन कार्यक्रम को बढ़ावा देना तथा देश में चिड़ियाघरों के प्रबन्ध कार्य में सुधार करना;

वन्य प्राणी आरक्षित स्थलों के लिए उपयुक्त प्रबन्ध-व्यवस्थाओं का विकास तथा ऐसे आरक्षित स्थलों के प्रबन्ध के लिए प्रशिक्षित कार्मिकों का एक केडर बनाने के साथ सम्बन्धित कर्मचारियों को उपयुक्त दिशा-निर्देश उपलब्ध कराना;

विश्व संरक्षण कार्य नीति की पद्धति पर, इस क्षेत्र में अनुसन्धान और शिक्षा की आवश्यकताओं को प्रोत्साहन देना तथा प्राकृतिक संसाधनों के बारे में राष्ट्रीय संरक्षण नीति बनाने और इसे अपनाने में सहायता करना।

राव बीरेन्द्र सिंह ने कहा कि पिछले अनुभवों से यह पता चलता है कि अकेले वैधानिक और प्रशासनिक उपाय ही काफी नहीं हैं। इस क्षेत्र में पूर्ण सफलता केवल जनसहयोग और जन-सहायता से ही प्राप्त की जा सकती है। वन्य प्राणी सप्ताह के आयोजन का उद्देश्य उसी पहलू की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित करना है।

अधिक भूमि की सिंचाई

चालू वित्त वर्ष के दौरान 26,70,000 हेक्टेयर अधिक भूमि की सिंचाई की जा सकेगी। इस उद्देश्य के लिए 1,832 करोड़ रुपये की राशि का प्रावधान किया गया है। पिछले वर्ष सिंचाई पर 1,630 करोड़ रुपये खर्च होने का अनुमान है और 24,40,000 हेक्टेयर भूमि की सिंचाई की गई थी। 26,70,000 हेक्टेयर अतिरिक्त भूमि की संभावित सिंचाई में से सबसे अधिक भाग उत्तर प्रदेश का है। यहां 9.57 लाख हेक्टेयर भूमि की सिंचाई की जा सकेगी। बिहार, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र में क्रमशः 3.13 लाख हेक्टेयर, 2.25 लाख हेक्टेयर और 1.77 लाख हेक्टेयर भूमि की सिंचाई की जा सकेगी।

गांवों को बिजली

ग्रामीण विद्युतीकरण निगम ने 86 नई परियोजनाओं के लिए लगभग 18 करोड़ रुपये की एक और ऋण सहायता को स्वीकृति दी है। नई परियोजनाओं से 12 राज्यों के 1600 गांवों में बिजली लगाई जा सकेगी। लगभग 19,000 सिंचाई पम्पसेटों को भी बिजली दी जाएगी। नए स्वीकृत किए गए ऋण में से 10 करोड़ रुपये से भी अधिक धन-राशि अविकसित तथा पिछड़े इलाकों के विद्युतीकरण पर खर्च की जाएगी।

संभावित क्षेत्र में कृषि उत्पादन को बढ़ावा देने की दृष्टि से विशेष परियोजना कृषि कार्यक्रम के अन्तर्गत 37 परियोजनाओं के लिए 4 करोड़ रुपये की ऋण सहायता की स्वीकृति दी गई है। इस कार्यक्रम के लिए वित्त की व्यवस्था ग्रामीण विद्युतीकरण निगम, कृषि पुर्नवित्त तथा विकास निगम तथा व्यापारिक बैंकों द्वारा संयुक्त रूप से की जाएगी। इन परियोजनाओं के अतिरिक्त लगभग 15,000 सिंचाई पम्पसेटों को बिजली दी जाएगी।

गांवों में पानी की सप्लाई

केन्द्र द्वारा चलाए गए त्वरित ग्रामीण जल पूर्ति कार्यक्रम के अन्तर्गत हिमाचल प्रदेश के 3,370 गांवों में पीने का पानी उपलब्ध कराने की योजनाओं को मंजूरी दे दी गई है। इस पर अनुमानित लागत 21.85 करोड़ रुपये आएगी। कांगड़ा जिले में सबसे अधिक कुल 1,175 योजनायें चल रही हैं जिनकी लागत लगभग 6.45 करोड़ रुपये है। लाहौल और स्पीती के दूरदराज के जिलों में 7.35 लाख रुपये लागत की 11 योजनायें चल रही हैं जबकि 16.25 लाख रुपये की लागत की 6 योजनायें किन्नौर जिले में शुरु की गई हैं।

छठी योजना के अन्तर्गत केन्द्र द्वारा प्रायोजित त्वरित ग्रामीण जल पूर्ति कार्यक्रम के लिए 600 करोड़ रुपये परिव्यय की व्यवस्था की गई है। वर्ष 1980-81 के दौरान हिमाचल प्रदेश सरकार को 5.62 करोड़ रुपये की राशि आवंटित की गई। वर्ष 1981-82 के लिए हिमाचल प्रदेश को तदर्थ आधार पर सहायता अनुदान के रूप में 2.08 करोड़ रुपये दिए गए हैं।

फसल बीमा योजना

भारतीय आम बीमा निगम भारत सरकार की पहल से आजमाइशी तौर पर फसल बीमा योजना चला रहा है। 1979-80 में गुजरात, तमिलनाडु और पश्चिम बंगाल सरकारों ने यह योजना अपने यहां शुरु की थी। यह 13,181 हेक्टेयर भूमि पर लागू हुई और इसके अन्तर्गत 16,268 किसान आए हैं। इससे 130 लाख रुपये का बीमा हुआ और 5 लाख रुपये प्रीमियम में प्राप्त हुए। 1980-81 में यह योजना चार राज्यों—तमिलनाडु, गुजरात, महाराष्ट्र तथा पश्चिम बंगाल में चल रही थी जिसमें 18,703 हेक्टेयर भूमि तथा 23,442 किसान आए। इसमें 165 लाख रुपये का बीमा हुआ और 6.9 लाख रुपये प्रीमियम के रूप में प्राप्त हुए।

एक

विकलांग

की

दास्तान

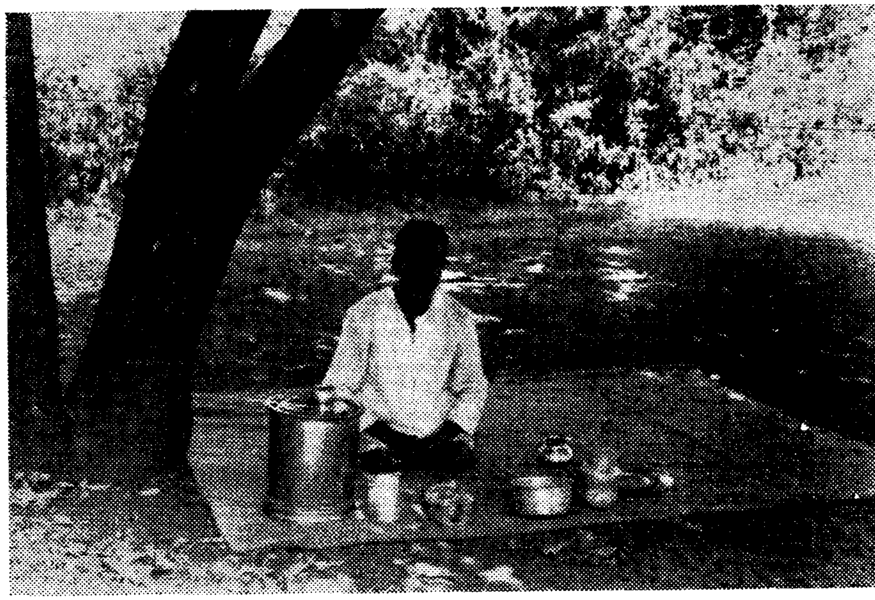

अपाहिज मथुरालाल अब बर्तन बेच कर अपने परिवार की रोजी-रोटी चलाता है।

पंगु चढ़े गिरिवर गहन

आसन्न विपन्नता से घिरा, अपंग, दोनों पैरों से पंगु इन्सान ख्याली तौर पर भले ही हवाई किला बना ले परन्तु हकीकत में उसे बाहरी मदद के लिए मजबूर होना ही पड़ेगा। निराश्रित की श्रेणी में उसे हाथ फैलाने होंगे, यह एक नियति है।

गुना विकास खंड के बजरंगगढ़ ग्राम के चौथी कक्षा पास ग्रामवासी श्री मथुरालाल साहू ने उपरोक्त धारणा को झुठलाते हुए "पंगु चढ़े गिरिवर गहन" की कहावत को चरितार्थ कर दिखाया। उसे आई० आर० डी० योजना वरदान बन गई।

श्री मथुरालाल के पिता बर्तनों का काम करते हुए परिवार का भरण-पोषण करते चले आ रहे थे। उनका साया उठते ही मथुरा लाल ने गृहस्थी की गाड़ी संभाली तो गैंगरीन से पीड़ित हो गए और उन्हें उपचार में गांठ की पूंजी गंवा देनी पड़ी। पैसे-पैसे को मुंहताज मथुरालाल के दोनों पैर जांघों के ऊपर से काट दिए गए। शरीर के नाम पर धड़ रह गया। विपत्तियों का पहाड़ टूट पड़ा। फिर भी इन्होंने हिम्मत नहीं हारी। पांच सदस्यों के परिवार के मुंह में रोटी का ग्रास डालने की जिम्मेदारी ने मथुरालाल को कर्त्तव्य बोध के प्रति सजग रखा। कृषि मंत्री श्री दिग्विजय सिंह के गुना प्रवास पर मथुरालाल की करुण गाथा बताई गई। अपंग के लिए करुणा की नहीं, सहारे की जरूरत होती है। बैंक ने पन्द्रह सौ रुपये का कर्ज मंजूर कर दिया। मथुरा लाल ने गरीबी के साथी अल्युमीनियम के बर्तन बैलगाड़ी में रख कर गांव के बाजारों में पहुंचाना आरम्भ कर दिया। गांव वाले अपाहिज सौदागर के साहस की दास्तान सुनते और छोटे-मोटे बर्तन खरीदते। मथुरा लाल ने पहला कर्ज लगभग पटा दिया है। इसी बीच उनकी एक मात्र दुधारू भैंस ट्रक दुर्घटना में चल बसी।

मथुरालाल साहस संजोए अपने काम में मशगूल है। उनके धंधे में इजाफा होगा। इस उम्मीद से उन्होंने खंड विकास अधिकारी के दफ्तर में दस्तक दी और तीन हजार रुपये के कर्ज की अरजी आगे बढ़ा दी गई। कम मुनाफा, जनता की सेवा और चटनी रोटी से परिवार का गुजारा, मथुरालाल का उद्देश्य है।

हिम्मत और ईमान को पूंजी समझने वाले मथुरालाल निराश्रित सहायता योजना के कायल नहीं हैं। यह कहते-कहते उन्होंने तुलसीदास की इन पंक्तियों को दुहराया

"कर्म प्रधान विश्व करि राखा
जो जस करे सो तस फल चाखा"

बैलगाड़ी में बैठे बैलों की रास साधे, गांवों की ओर बढ़ता मथुरालाल, दुख दैन्य से पीड़ित उन असंख्य लोगों का सारथी दिखाई दिया, जो मन मारे बैठे हैं और यह मर्म नहीं समझ पाते कि "मन के हारे हार है, मन के जीते जीत"

भरत चन्द्र नायक
जन संपर्क अधिकारी
गुना

निदेशक, प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, पटियाला हाउस, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित तथा
प्रबन्धक, भारत सरकार मुद्रणालय, फरीदाबाद द्वारा मुद्रित।

RN 708/57
P & T Regd. No. D(DN)98
Licenced under U(D)-55 to
post without pre-payment at Civil Lines Post Office, Delhi

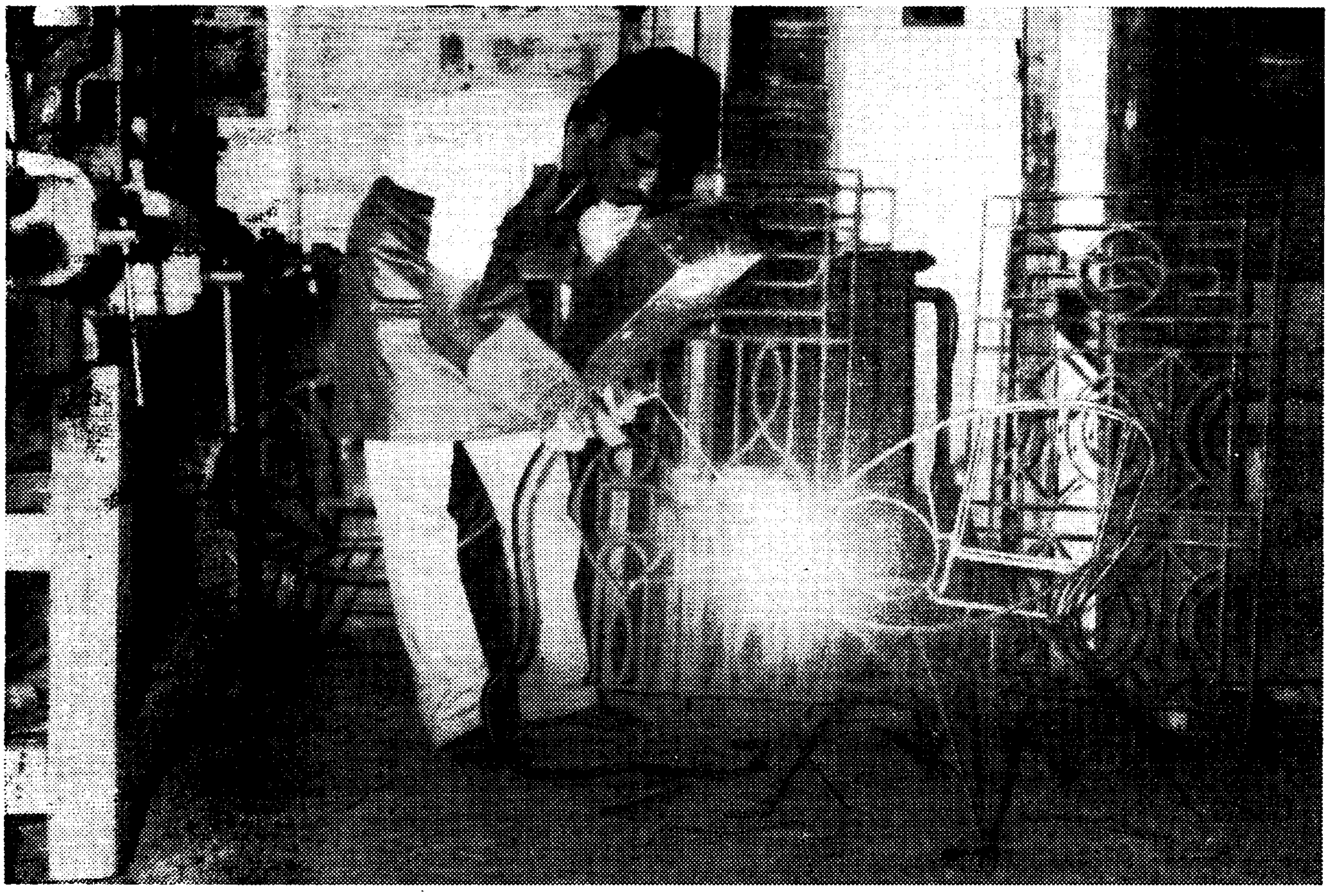

प्रशिक्षार्थी जूनियर स्कूल पाण्डिचेरी में 'ट्राइसेम' के अन्तर्गत वैल्डिग का काम करते हुए।

महिलाएं अगरबत्ती बनाने का प्रशिक्षण लेती हुई।